सहजानंद शास्त्रमाला

अध्यात्म-चर्चा प्रवचन

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

ॐ 卐 ॐ

अध्यात्म-चर्चा

लेखक

आध्यात्मिक सन्त, शान्तमूर्ति, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
वर्णी मनोहर जी 'सहजानन्द' महाराज

सम्पादक :

रतनलाल जैन, एम० कॉम०
सदर मेरठ

प्रकाशक :

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
सदर, मेरठ

को पढ़ना आवश्यक है। इनके जाने बिना स्वाध्यायमें रस नहीं आता उनके समझाने वाले सद्गुरुओं का समागम होना इस कलि-कालमें दुर्लभ ही नहीं असम्भव जैसा हो गया है। फिर भी इस समय हमारे अहोभाग्य से कहीं-कहीं कोई-कोई सद्गुरु का समागम हो गया है। परन्तु उनके लिखित ग्रन्थ सर्वत्र मिल सकते हैं।

प्राणीमात्रके हितचिन्तक अध्यात्मयोगी शान्तिमूर्ति अनेक शास्त्रपारगामी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर लाल जी वर्णी ने अनेक ग्रन्थ रचकर महान उपकार किया है।

अब आपके सामने अध्यात्म चर्चा नामक ग्रन्थ उपस्थित है जिसमें आत्मा सम्बन्धी अनेक चर्चायें ही हैं। इनका अध्ययन करनेसे समयसार परमात्मप्रकाश आदि ग्रन्थोंका समझना अत्यन्त सरल हो जायगा।

इस ग्रन्थमें जीव अजीव स्वभाव विभाव, निमित नैमित्तिक आदिका लक्षण लिखकर आत्मोपयोगी अनेक चर्चायें प्रश्नोत्तर रूपमें समझानेका प्रयत्न किया है। अतः प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमीको इसे अध्ययन कर आत्मस्वरूप को पहचानकर शान्ति लाभ प्राप्त-कर मुक्ति के मार्ग में लगना चाहिये।

निवेदक :

(पं०) बिहारीलाल जैन शास्त्री

सदर, मेरठ।

भूमिका

आजका संसार भौतिकवादके पचड़ेमें पड़कर आत्मस्वरूप को भूलकर उसकी उन्नतिमें पड़कर विषय कषायके पुष्ट करनेके लिये अनेक प्रकारके हिंसात्मक प्राणि विध्वंसक यंत्रोंके तथा विषय पोषक साधनोंके निर्माणमें तल्लीन है। अनेक प्राणियोंको जल्दीसे जल्दी मारा जा सके ऐसे यंत्रोंके आविष्कारके अन्वेषण प्रतिदिन हो रहे हैं। इन साधनोंसे ही विश्वकी शान्ति स्थापित करने के स्वप्न देख रहे हैं।

परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। पूर्व समयमें अनेक महायुद्ध हुए परन्तु किसीको भी सुखशान्ति लाभ नहीं हुआ। युद्धसे ऊबकर बहुतोंको तो वैराग्य पैदा हो गया। बनमें दीक्षा लेकर सुखशान्ति की शरणमें पहुँच गये।

वास्तवमें सुखशांति आत्माका निजी गुण है, वह आत्मामें ही है पर पदार्थोंमें नहीं ! पर पदार्थ नश्वर हैं। उनकी प्राप्तिके लिये अपने स्वरूप को भूल जाना महान मूर्खता है।

अतः हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि अपनी आत्माको पहचानें आत्माको पहचाननेके साधक पूर्वाचार्य कृत समयसार परमात्मप्रकाश आत्मानुशासनादि आध्यात्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें। उन ग्रन्थों को आसानी से समझने के लिये लाक्षणिक ग्रन्थों

ॐ परमात्मने नमः

अध्यात्मचर्चा

मंगलाचरणम्

कोऽहं किं जगदेतदत्र किमु कः सम्बन्ध आरोपितः ।
कः कं केन कुतश्च कुत्र कुरुते कस्मै स्वतो वान्यतः ।।
किं तथ्यं हितमस्ति किं किमथवा दुःखं सुखं वा कुतः ।
नत्वा तत्त्वयुतं समाधिकृतये ह्यध्यात्मचर्चोच्यते ।।१।।

प्र० १—यह जगत् क्या है ?

उ०—चेतन व अचेतन द्रव्योंका समूह यह जगत् है ।

प्र० २—द्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें परिणमन तो होता रहे परन्तु अपने स्वभाव (गुणों) को न छोड़े अर्थात् जो बनें, बिगड़े और बना रहे अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त हो उसे द्रव्य कहते हैं । जैसे—आमकी कच्ची पक्की सब अवस्थायें होती हैं—हरा पीला आदि रूप, खट्टा मीठा आदि रस, कठोर कोमल आदि स्पर्श व गंध बदलते रहते हैं परन्तु उन सब अवस्थावों

में रूप रस गंध स्पर्श गुण बने हो रहते हैं। यहाँ यद्यपि आम भी द्रव्य नहीं किन्तु पर्याय है तथापि शीघ्र समझनेके लिये यह स्थूल दृष्टान्त दिया गया है।

प्र. ३—क्या वे परिणमन गुणोंसे भिन्न हैं ?

उ.—वे परिणमन गुणोंके ही हैं इसलिये वे अवस्थायें उस समय गुणोंसे भिन्न नहीं है परन्तु गुण तो सामान्य है क्योंकि वह सदैव रहता है और पर्याय विशेष है वह प्रति समय जुदी-जुदी होती रहती है इसलिये लक्षण और कालके भेदसे भिन्न हैं।

प्र. ४—क्या गुण और द्रव्य भिन्न वस्तु हैं ?

उ.—गुणों का पिण्ड ही द्रव्य है जब एक एक गुणकी विवक्षा की जाती है तब वे गुण कहलाते हैं और जब पिण्ड पर दृष्टि देते हैं तब वह द्रव्य कहलाता है।

प्र. ५—द्रव्य कितने हैं ?

उ.—द्रव्य ६ हैं—(१) जीव, (२) पुद्गल, (३) धर्म, (४) अधर्म, (५) आकाश, (६) काल।

प्र. ६—क्या द्रव्य चेतन अचेतनके भेदसे २ प्रकार के नहीं हैं ?

उ.—द्रव्य तो ६ हैं परन्तु जीवमें चेतना होनेसे जीव चेतन हैं और शेषके ५ द्रव्योंमें चेतना नहीं होनेसे वे पांचों अचेतन हैं इसलिये इस विवक्षासे द्रव्य चेतन और अचेतन

इस तरह दो कह देते हैं परन्तु द्रव्य ६ ही हैं।

प्र. ७—द्रव्य ६ ही क्यों हैं कम या अधिक क्यों नहीं हैं

उ.—द्रव्य उतने होते हैं जिनका परिणमन त्रिकाल में भी अन्य द्रव्यके परिणमन रूप या सदृश नहीं हो सकता हो।

प्र. ८—इस तरह तो द्रव्य अनन्त हो जायेंगे ?

उ.—एक दूसरेके परिणमन रूप नहीं हो सकता इसलिये द्रव्य अनंत ही है। जैसे—अनंत जीव, अनंत पर-माणु, १धर्मद्रव्य, १अधर्मद्रव्य, १आकाशद्रव्य, असंख्यात कालद्रव्य, परन्तु जिनका परिणमन सदृश हो सकता है वे जाति अपेक्षा एक द्रव्य कहलाते हैं अर्थात् जिनके असाधा-रण गुण सदृश होते हैं वे एक श्रेणीमें गर्भित किये जाते हैं।

प्र. ९—वे असाधारण गुण कौन हैं ?

उ.—दर्शन-ज्ञान-श्रद्धा-चारित्र। स्पर्श-रस-गंध-वर्ण। गतिहेतुत्व। स्थितिहेतुत्व। अवगाहनहेतुत्व। परिणमन-हेतुत्व।

प्र. १०—किस द्रव्यमें कौन कौन गुण हैं जो परस्पर सदृश होते हैं व अन्य द्रव्योंमें उनका सर्वथा अभाव रहता है ?

उ.—जीव द्रव्यमें दर्शन ज्ञान श्रद्धा चारित्र, पुद्गल द्रव्य

में स्पर्श रस गंध वर्ण, धर्म द्रव्यमें गतिहेतुत्व, अधर्म द्रव्यमें स्थितिहेतुत्व, आकाश द्रव्यमें अवगाहन हेतुत्व, काल द्रव्यमें परिणमनहेतुत्व ।

प्र. ११—यह तो अध्यात्मचर्चाका ग्रन्थ है आप ऐसा उत्तर क्यों देते हैं जिससे आत्माके सिवाय अन्य विषयक प्रश्न उपस्थित होने लगते हैं ?

उ.—आत्मनिर्णय परसे भिन्न समझे बिना नहीं होता और ऐसी समझ परका यथार्थ ज्ञान बिना नहीं होती इस लिये आत्मा और अनात्माका प्रायोजनिक ज्ञान करना ही चाहिये ।

प्र. १२—वस्तुओंका ज्ञान किन किन उपायों से होता है ?

उ.—लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप तथा संख्या, स्वामित्व, क्षेत्र, साधन, स्थिति और प्रकार आदि उपायों से वस्तुका विशेष ज्ञान होता है ।

प्र १३—लक्षण किसे कहते हैं ?

उ.—परस्पर मिले हुए बहुत पदार्थोंमेंसे विवक्षित किसी पदार्थको जुदा समझा देने वाले चिह्नको लक्षण कहते हैं ।

प्र. १४—लक्षणके कितने भेद हैं—और कौन कौन हैं ?

उ.—लक्षणके २ भेद हैं—१आत्मभूत लक्षण, २अनात्म-

भूत लक्षण।

प्र १५—आत्मभूत लक्षण किसे कहते हैं ?

उ.—जो लक्षण लक्ष्यसे जुदा न हो। आत्मभूत लक्षण भी दो प्रकारका है—१ त्रैकालिक आत्मभूत, २ वर्तमान समयमात्र आत्मभूत।

प्र. १६—त्रैकालिक आत्मभूत लक्षण किसे कहते हैं ?

उ.—जो द्रव्यमें तीनों कालमें पाया जावे जैसे—जीवका लक्षण चेतना (ज्ञान दर्शन)।

प्र. १७—वर्तमानमात्र आत्मभूत लक्षण किसे कहते हैं ?

उ.—जो द्रव्यमें वर्तमान समयमें पाया जावे परन्तु भूत भविष्यकालमें न रहे जैसे विवक्षित जीवके वर्तमान भवमें क्षायोपशमिक ज्ञान।

प्र. १८—द्रव्यका वास्तविक लक्षण किससे जाना जाता है ?

उ.—त्रैकालिक आत्मभूत लक्षणसे द्रव्यकी पहिचान होती है।

प्र. १९—फिर वर्तमानमात्र आत्मभूत लक्षण कहनेकी क्यों आवश्यकता है ?

उ.—अध्यात्मचर्चामें पर्यायका आधार बतानेकी आवश्यकता होती है उसे समझनेके लिये यह आवश्यक है।

प्र. २०—अनात्मभूत लक्षण किसे कहते हैं ?

उ.—जो लक्ष्यमें मिला हुआ न हो जैसे छत्री (छाते वाला) का लक्षण छत्र ।

प्र. २१—लक्षणके दोष कितने हैं जिन दोषोंकी निवृत्ति देखकर लक्षणकी समीचीनताका निश्चय हो ?

उ.—लक्षणके दोष ३ हैं, १ अव्याप्ति, २ अतिव्याप्ति, ३ असंभव ।

प्र. २२—अव्याप्ति दोष किसको कहते हैं ?

उ.—जो लक्षण समस्त लक्ष्यमें न पाया जावे उस लक्षणके दोषको अव्याप्ति दोष कहते हैं जैसे—पशुका लक्षण सींग, जीवका लक्षण राग ।

प्र. २३—लक्ष्य किसे कहते हैं ?

उ.—जिसका लक्षण किया जावे उसे लक्ष्य कहते हैं ।

प्र. २४—अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं ?

उ.—जो लक्षण अलक्ष्यमें भी चला जावे उस लक्षणके दोषको अतिव्याप्ति कहते हैं, जैसे—गायका लक्षण सींग व जीवका लक्षण अमूर्तिपन ।

प्र. २५—असंभव दोष किसे कहते हैं ?

उ.—जो लक्षण लक्ष्यमें बिलकुल न पाया जावे उस लक्षणके दोषको असंभव दोष कहते हैं; जैसे—मनुष्य का लक्षण सींग व जीवका लक्षण रूप रस आदि ।

प्र· २६—प्रमाण किसे कहते हैं ?

उ —सच्चे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं इसमें संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय ये तीन दोष नहीं होते हैं।

प्र. २७—संशय किसे कहते हैं ?

उ.—किसी वस्तुमें परस्पर विरुद्ध अनेक कल्पनाओंसे संदेह होनेको संशय कहते हैं जैसे—सीपमें यह संदेह होना कि यह सीप है या चाँदी व जीवमें यह संदेह होना कि जीव भौतिक है या स्वतंत्र सत्तावान् है।

प्र· २८—विपर्यय किसे कहते हैं ?

उ.—किसी वस्तुमें उल्टा निश्चय करनेको विपर्यय कहते हैं जैसे—सीपमें यह निश्चय करना कि यह चाँदी है व जीवमें यह निश्चय करना कि यह पृथ्वी जल आग वायु से निर्मित है।

प्र· २९—अनध्यवसाय किसे कहते हैं ?

उ.—किसी वस्तु में अनिश्चयात्मक सामान्यबोध होकर फिर उसमें विशेष कल्पना या निश्चय न हो जैसे मार्गमें जाते हुए तिनका आदिका स्पर्श होनेपर कुछ है ऐसा सामान्य अनिश्चयात्मक बोध, व जीवमें, 'कुछ है' ऐसा अनिश्चयात्मक बोध।

प्र· ३०—प्रमाणके कितने भेद हैं

उ.—दो भेद है– १प्रत्यक्ष–२परोक्ष ।

प्र. ३१—प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं ?

उ.—इंन्द्रियोंकी सहायताके बिना केवल आत्मीय शक्ति से जाननेको प्रत्यक्ष कहते हैं यहां अक्ष का अर्थ आत्मा है।

प्र. ३२—प्रत्यक्ष प्रमाण (ज्ञान) के कितने भेद हैं ?

उ.—दो भेद हैं–१ देशप्रत्यक्ष, २ सकलप्रत्यक्ष ।

प्र. ३३—देशप्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उ.—इंद्रियोंकी सहायताके बिना आत्मीय शक्तिसे रूपी पदार्थको एकदेश प्रत्यक्ष जानने वाले ज्ञानको देशप्रत्यक्ष कहते हैं।

प्र. ३४—देशप्रत्यक्षके कितने भेद हैं ?

उ.—दो भेद हैं–१ अवधिज्ञान, २ मनःपर्ययज्ञान ।

प्र. ३५—अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उ.—जो इंद्रियोंकी सहायताके बिना आत्मीय शक्तिसे द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लेकर रूपी पदार्थको एक देश स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं। यदि किसी जीव के सम्यग्दर्शन नहीं है और अवधिज्ञान हो तो उसे कुअवधि या विभंगावधि कहते हैं, अवधिज्ञान शब्दसे नहीं कहते हैं, अवधिज्ञान सम्यग्दृष्टिके ही कहा जाता है।

प्र. ३६—अवधिज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ.—अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि, सर्वावधि के भेदसे ३ भेद हैं अथवा भवप्रत्यय, लब्धिप्रत्ययके भेदसे २भेद

हैं अथवा अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थितके भेदसे ६ भेद हैं।

प्र. ३७—अवधिज्ञानके इन भेदोंके लक्षण क्या हैं ?

उ.—इनके लक्षण सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये तथा परस्पर सामञ्जस्य भी लगा लेना चाहिये यहां विस्तार न करनेकी इच्छासे नहीं कह रहे हैं।

प्र. ३८—मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उ.—जो परके मनमें तिष्ठते हुए रूपी पदार्थ को बिना इन्द्रियोंकी सहायताके केवल आत्मीय शक्ति से जाने उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

प्र. ३९—मनःपर्ययज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ.—दो भेद हैं-१ ऋजुमति २ विपुलमति।

प्र. ४०—ऋजुमतिमनःपर्यय किसे कहते हैं ?

उ.—जो सरल मन वचन कायमें तिष्ठे हुए पदार्थको जाने वह मनःपर्यय ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है।

प्र. ४१—विपुलमतिमनःपर्यय किसको कहते हैं ?

उ.—जो सरल या वक्र मन वचन कायमें तिष्ठे हुए पहले चिन्तवन किये हुए, या आगे चिन्तवन किये जाने वाले, या आधे चिन्तवन किये पदार्थको जाने वह विपुलमतिमनःपर्यय है यह ज्ञान केवलज्ञान होने पर ही छूटता है।

प्र. ४२—सकलप्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ.—जो तीनों लोक व तीनों काल व अलोक सम्बन्धी सर्व द्रव्य गुण पर्यायोंको एक साथ केवल आत्मीय शक्तिसे स्पष्ट जाने उसे सकलप्रत्यक्ष कहते हैं, इसीका नाम केवल ज्ञान है।

प्र. ४३—परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं ?

उ.—जो इन्द्रिय या मनके निमित्तसे पदार्थोंको जाने उसे परोक्ष प्रमाण (ज्ञान) कहते हैं।

प्र. ४४—परोक्षज्ञान के कितने भेद हैं ?

उ.—परोक्षज्ञानके २ भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान।

प्र. ४५—मतिज्ञान व श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उ.—जो इन्द्रिय व मनके निमित्तसे पदार्थों को जाने उसे मतिज्ञान और मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थोंमें अन्य विशेष जाननेको श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्र. ४६—जो इन्द्रियोंसे जाना जाता है ऐसे मतिज्ञान को तो लोक प्रत्यक्ष कहते हैं जैसे—मैंने प्रत्यक्ष देखा, आदि फिर आप परोक्ष क्यों कहते हैं ?

उ.—एकदेश स्पष्ट होनेके कारण इसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहते हैं परन्तु इन्द्रिय और मनके निमित्तसे जो ज्ञान होता है वह पराधीन होनेके कारण परोक्ष ही कहा गया है।

प्र. ४७ - क्या मतिज्ञान श्रुतज्ञान सम्यक् ही होते हैं ?

उ.—जिस जीवके सम्यग्दर्शन नहीं है उस जीव के मति और श्रुतज्ञान "कुमति और कुश्रुत" नामसे कहे जाते हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन रहित जीवको वस्तुके स्वरूप कारणादिमें यथार्थ निर्णय नहीं होता। सम्यग्दृष्टि जीवके मति और श्रुतज्ञान सम्यक् होते हैं।

प्र. ४८—नय किसे कहते हैं ?

उ.—प्रमाणसे ग्रहण किये गये पदार्थोंमें अभिप्राय वश एकदेश ग्रहण करने वाले ज्ञानको नय कहते हैं।

प्र. ४९—नयका किस ज्ञानमें अन्तर्भाव होता है ?

उ.—नयका श्रुतज्ञानमें अन्तर्भाव होता है क्योंकि नय वक्ताके विकल्प हैं और श्रुतज्ञान विकल्पात्मक ज्ञान है, लक्षणकी अपेक्षा इतना अन्तर है कि श्रुतज्ञान तो सर्व भेद स्वरूप वस्तुको जानता है और नय एक भेदको ग्रहण करता है, इसीलिये श्रुतज्ञान प्रमाण है और नय प्रमाणांश है।

प्र. ५०—तब क्या श्रुतज्ञानसे अतिरिक्त ज्ञान सविकल्पक नहीं हैं ?

उ.—मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञान ये चारों निर्विकल्प हैं क्योंकि यह अपने विषय को जानते मात्र हैं कल्पना तथा प्ररूपणसे रहित हैं, यदि अर्थ का ग्रहण (जानना) विकल्प है यह अर्थ किया जाये तो

ज्ञानमात्र सविकल्प है।

प्र० ५१—नयके कितने भेद हैं ?

उ.—नयके आगमिक प्ररूपणकी अपेक्षा द्रव्यार्थिक पर्यार्थिक इस तरह दो भेद हैं तथा ज्ञान नय, अर्थ नय, शब्द नय इस तरह ३ भेद तथा नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ, एवंभूत इस तरह ७ भेद हैं, तथा विवक्षावश अनेक तरहसे भेद हैं और जितने वचनके भेद हैं उतने नयके भेद हैं, अध्यात्मप्ररुपणाकी अपेक्षा प्रायः निश्चय व्यवहार यह दो भेद हैं ।

प्र. ५२—क्या द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक व निश्चय, व्यवहार इनमें सामञ्जस्य हो सकता है ?

उ.—द्रव्यार्थिक का सामञ्जस्य निश्चयके साथ हो सकता है, क्योंकि द्रव्यार्थिकका विषय द्रव्य है और निश्चय का विषय केवल है, तथा पर्यायार्थिकका विषय पर्याय है और व्यवहारका विषय भद, अंश, औपाधिक भाव आदि है। अथवा ये सातों नय निश्चयनय हैं क्योंकि परके सम्बन्धसे परमें कुछ कहना व्यवहार है ।

प्र. ५३—निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उ.—वस्तुके अभेद एवं अंतरंग विषयकी मुख्यतासे होने वाले अभिप्रायको निश्चय नय कहते हैं ।

प्र. ५४—व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

उ.—वस्तुके भेद, विशेष एवं बहिरंग विषयकी मुख्यता से होनेवाले अभिप्रायको व्यवहार नय कहते हैं।

प्र. ५५—निश्चय नयके कितने भेद हैं ?

उ.—३ भेद हैं १—परमशुद्धनिश्चयनय २- शुद्ध निश्चयनय ३—अशुद्ध निश्चयनय।

प्र. ५६—परमशुद्ध निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उ.—जो परके सम्बन्ध व परके सम्बन्धसे होने वाले भावसे रहित केवल वस्तुके त्रैकालिक अखण्ड स्वभाव को जाने उसे परमशुद्धनिश्चयनय कहते हैं।

प्र. ५७—शुद्धनिश्चयनय किसे कहते हैं ?

उ.—जो शुद्धपर्याययुक्त द्रव्यका ज्ञान करावे उसे शुद्धनिश्चयनय कहते हैं।

प्र. ५८—अशुद्धनिश्चयनय किसको कहते हैं ?

उ.—जो परके सम्बन्धसे होने वाले परिणमनको बतलावे उसे अशुद्ध निश्चयनय कहते हैं।

प्र. ५९—व्यवहार नयके कितने भेद हैं ?

उ.—व्यवहारनयके ४ भेद हैं—१ उपचरित असद्भूत व्यवहारनय २. उपचरितसद्भूत व्यवहारनय ३. अनुपचरितअसद्भूत व्यवहारनय ४. अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय।

प्र. ६०—उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय किसको

कहते हैं ?

उ.—किसी द्रव्यके निमित्तसे हुए गुण किसी अन्य द्रव्यके कहना असद्भूत व्यवहार है और वह जब परकी अपेक्षासे व्यवहृत होता है तब उसे उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे—बुद्धि (समझ) में आने वाले क्रोधादिकोंको आत्माके कहना। ये क्रोधादिक विभाव केवल जीवके तो हैं नहीं, पौद्गलिक कर्मके विपाक हैं फिर भी जीवके कहना यह तो असद्भूत है, आत्मामें जोड़ा यह व्यवहार है, क्रोधादिकोंको क्रोधादिक समझकर भी उन्हें जीवके बतलाना यह उपचरित है। इस कथनसे यह शिक्षा लेनी कि ये आत्माके स्वरूप नहीं हैं।

प्र. ६१—उपचरितसद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उ.—उसी वस्तुका गुण उसी वस्तुमें कहना सद्भूत व्यवहार है परन्तु जब इसका परकी अपेक्षासे व्यवहार होता है तब उसे उपचरितसद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे—आत्मा स्व परका ज्ञाता है, इसमें जो ज्ञातृत्व गुण आत्मा का है आत्मामें बताया यह सद्भूत है, और ज्ञातृत्वगुणका आत्मा गुणीसे भेद किया यह व्यवहार है और पदार्थोंके अवलम्बनसे उपचरित किया यह उपचरित है इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि ज्ञातृत्व तो स्वयं ही है पदार्थोंके

कारण नहीं वे तो विषयभूत हैं अतः उनका उपचार होता है।

प्र. ६२—अनुपचरितअसद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उ.—परके निमित्तसे होनेवाले उन भावोंको जो बुद्धि में नहीं आते उपादानके कहना सो अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे—अबुद्धिगत क्रोधादि जीवके कहना। यहां जो क्रोधादिक भाव सूक्ष्म हैं उनका उपचार तो होता नहीं, अतः अनुपचरित हैं, केवल जीवके नहीं हैं इसलिये असद्भूत हैं तथा जीवके जोड़े गये यह व्यवहार है। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जीवमें सहज होने वाले ज्ञायक भाव व अन्य अनुजीवो गुणोंके शुद्ध परिणमनके अतिरिक्त जो भी विभाव परिणाम हैं चाहे वह कैसा ही सूक्ष्म हो जीवका स्वरूप नही है।

प्र. ६३—अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

उ.—जिस पदार्थमें जो गुण है उसे विशेषकी अपेक्षा रहित सामान्य रीतिसे उसीका कहना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। जैसे "ज्ञान जीवका गुण है"। यद्यपि ज्ञान में अनेक ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं तथापि यहाँ अवलम्बन विशेष दोनोंकी अपेक्षा न रखकर वर्णन है इसलिये अनुप-

चरित सद्भूत व्यवहार नय है। अनुपचरित सद्भूत और निश्चय नयमें अंतर नहीं है। परन्तु प्ररूपक व्यवहार नय ही होता है।

प्र. ६४—शरीर मेरा है, धन मेरा है आदि व्यवहार किस नयमें गर्भित होते हैं ?

उ.—यह व्यवहार केवल उपचार मात्र है, मिथ्या है, उसकी अध्यात्मचर्चामें कोई प्रतिष्ठा नहीं है इसलिये यह उपेक्षाके ही योग्य है इसका वर्णन करना निरर्थक है।

प्र. ६५—निक्षेप किसे कहते हैं ?

उ.—लोक व्यवहार करनेको निक्षेप कहते हैं।

प्र. ६६—निक्षेपके कितने भेद हैं ?

उ.—चार भेद हैं— १-नामनिक्षेप २-स्थापना निक्षेप ३-द्रव्यनिक्षेप ४-भावनिक्षेप।

प्र. ६७—नामनिक्षेप किसे कहते हैं ?

उ.—किसी वस्तुके कुछ भी नाम रखनेको नाम-निक्षेप कहते हैं।

प्र. ६८—स्थापना निक्षेप किसे कहते हैं ?

उ.—किसी पदार्थमें अन्य पदार्थके संकल्प अर्थात् स्थापना करनेको स्थापना निक्षेप कहते हैं। यदि तदाकार की स्थापना होती है तो वह तदाकार स्थापना है जैसे— प्रतिमामें अरहन्त भगवानकी स्थापना करना, तथा यदि

अतदाकार स्थापना होती है तो अतदाकार स्थापना है जैसे—सतरंजकी गोटमें बादशाह वजीरकी स्थापना करना।

प्र. ६९—नाम निक्षेप व स्थापना निक्षेपमें क्या अंतर है ?

उ.—नाम निक्षेपमें तो पूज्य अपूज्य बुद्धि पैदा नहीं होती परन्तु स्थापनामें पूज्यादि बुद्धि होती है।

प्र. ७०—द्रव्यनिक्षेप किसे कहते हैं

उ.—भूत या भविष्यकी पर्याय वर्तमानमें कहना द्रव्य निक्षेप है, जैसे—जो कोतवाल था उसे कोतवाल न रहनेपर भी कोतवाल कहना या जो राजपुत्र आगे राजा होगा उसे अभी राजा कहना।

प्र. ७१—भावनिक्षेप किसे कहते हैं ?

उ.—वर्तमान समयकी पर्यायको वर्तमानमें कहना। जैसे—जब कोतवाल हो तभी कोतवाल कहना।

प्र. ७२—यह तो लौकिक बात हुई इन निक्षेपोंका अध्यात्मसे कैसा न्यास होता है ?

उ.—समग्र तत्वका ज्ञाता अनुभवी आत्मा जब व्यवहार करनेको होताहै तब कुछभी शब्दका होनाही प्रथम प्रयास होता वह व्यापक शब्द तो ॐ है, याकुछभी नाम आना नाम निक्षेप है। फिर स्थापना ज्ञानात्मक तत्त्व है उसके २ भेद हैं तदा-

कार और अतदाकार। इनमेंसे अतदाकार तो ज्ञानाकारको कहते हैं और तदाकार ज्ञेयाकारको कहते हैं, जिस अर्थका वर्णन होना है वह ज्ञानमें ग्रहण होनेपर ही आगे व्यवहार को प्राप्त होता। फिर वह भाव-अर्थ—प्रयोगमें आनेवाला होता है वह द्रव्यनिक्षेप है एवं प्रयोगमें वर्ततेहुए वर्णनमें आ रहे हुए अर्थका व्यवहार भावनिक्षेप है।

प्र. ७३—इसप्रकारके चारों निक्षेपोंका काल और क्रम आदि क्या है?

उ.—किसी पदार्थके व्यवहारमें ये चारों निक्षेप नियम से इस क्रमसे आते हैं परन्तु उनका काल जल्दी-जल्दी होने से विभिन्न वृत्तियां प्रायः ज्ञात नहीं होतीं।

प्र. ७४—संख्यासे अभिप्राय क्या है?

उ.—जिसका वर्णन करना हो उसकी संख्या बताना, जैसे जीव अनंत हैं।

प्र. ७५—स्वामित्व किसे कहते हैं?

उ.—जिस वस्तुका वर्णन करना हो उसका स्वामी बताना, जैसे—ज्ञानका स्वामी जीव।

प्र. ७६—क्षेत्रसे क्या प्रयोजन है?

उ.—वस्तु जितने क्षेत्रमें रह सके उसका वर्णन करना जैसे—जीवका क्षेत्र लोकाकाश है।

प्र. ७७—साधनसे क्या प्रयोजन है?

उ.—वस्तुके परिणमनमें अंतरंग और बहिरंग कारण बताना, जैसे—जीवके मोक्ष रूप परिणमनमें मोक्षमार्गकी अन्तिम पात्र अवस्था (रत्नत्रयस्वरूप) अंतरंग साधन है और बहिरंग साधन तप संयम महाव्रत आदि हैं।

प्र. ७८—स्थिति किसे कहते हैं ?

उ.—कालमर्यादाका नाम स्थिति है, जैसे—जीव अनादि अनंत काल स्थायी है, मोक्ष सादि अनंत है आदि।

प्र. ७९—प्रकारसे क्या प्रयोजन है ?

उ.—वस्तुके भेद (किस्में) बताना प्रकार है, जैसे—मोक्ष के दो भेद हैं, द्रव्यमोक्ष, भावमोक्ष, तथा संसार के २ भेद हैं द्रव्यसंसार व भावसंसार आदि।

प्र. ८०—जीवमें जो दर्शन ज्ञान श्रद्धा चारित्र गुण बताये हैं उनका स्वरूप या कार्य क्या है ?

उ.—दर्शनका कार्य सामान्य प्रतिभास है, इसमें किसी भी पदार्थका जानना या विकल्प नहीं है अतः आत्माका स्वोन्मुख प्रतिभास दर्शन है, जैसे—कोई पुरुष पुस्तकको जान रहा था अब पुस्तकको छोड़ चौकीको जाननेकेलिये तैयार हुआ है इसमें जब पुस्तकका जानना तो छूट गया और चौकीका जानना न हुआ इस बीच जो प्रतिभास रहा वह दर्शन है।

प्र. ८१—इस तरह तो सब जीवोंके दर्शन हो रहा है

चाहें वह बहिरात्मा भी क्यों न हो ?

उ.—हाँ सभी जीवोंके दर्शन होता है परन्तु जो दर्शन के विषयको आत्मरूप श्रद्धा करता है वह अन्तरात्मा है, जो दर्शन होकर भी दर्शनके विषयको स्वलक्ष्य में नहीं कर सकते वे बहिरात्मा हैं।

प्र. ८२—श्रद्धागुणका कार्य क्या है ?

उ.—निज द्रव्यमें या निजपर्यायमें रुचि प्रतीति विश्वास होना श्रद्धागुणका कार्य है जबतक अपनी किसी पर्यायपात्रमें रुचि व हित विश्वास रहता है तबतक श्रद्धागुण विपरीत परिणमन है और जब अनादि अनंत अखंड चैतन्यमय एक-स्वरूप निज आत्मतत्त्वमें रुचि प्रतीति विश्वास हो जाता है तब वह श्रद्धागुणका स्वभाव सम्यक्त्व परिणमन है। श्रद्धागुणके सम्यक् परिणमनसे ज्ञानादि गुण सम्यक् होते हैं और विपरीतपरिणमनसे ज्ञानादि गुण विपरीत होते हैं।

प्र. ८३—ज्ञानगुणका क्या कार्य है ?

उ.—जानना, ज्ञान स्वरूपसे न सम्यक् है न मिथ्या है, जब मिथ्यात्व भाव रहता है तब ज्ञान मिथ्या कहलाता है और जब सम्यक्त्व भाव रहता है तब सम्यक् कहलाता है।

प्र. ८४—चारित्र गुणका क्या कार्य है ?

उ.—चारित्र गुण स्वभाव रूप भी परिणमता है,

विभाव रूप भी परिणमता है। जब विभाव रूप परिणमता है तब राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि कार्य है, जब स्वभाव रूप हो जाता है तब राग द्वेष क्रोध मान आदि कषाय विषयोंसे रहित शान्त शुद्ध आत्माके स्वभावमें स्थिर रहना कार्य है।

प्र. ८५—पुद्गलद्रव्यके गुणोंका स्पष्टीकरण कीजिये।

उ.—जो स्पर्शन इन्द्रियसे समझा जाय वह स्पर्श गुण है जैसे—ठंडा, गर्म, रूखा, चिकना आदि। जो रसना इन्द्रियसे जाना जाय वह रस गुण है जैसे—खट्टा मीठा आदि। जो घ्राण इन्द्रियसे जाना जाय वह गंध है जैसे—सुगंध दुर्गन्ध। जो चक्षु इन्द्रियसे जाना जाय वह रूप है जैसे—काला, पीला, नीला आदि।

प्र. ८६—इसी तरहसे जो श्रोत्रेन्द्रियसे जाना जाता है वह शब्द, गुण क्यों नहीं माना गया है ?

उ.—शब्द श्रोत्रेन्द्रियसे जाना जाता है तब भी वह गुण नहीं है किन्तु पर्याय है पुद्गलकी किसी संयोग वियोगकी दशामें शब्द रूप पर्याय होती है। जो गुण होता है उसका सद्भाव त्रिकाल रहता है चाहे वह किसी अवस्थामें रहे। पुद्गलमें शब्द रूप परिणमन सदा नहीं रहता इसलिये शब्द गुण नहीं है अतः पुद्गलके चार असाधारण गुण हैं स्पर्श, रस, गंध, वर्ण।

प्र· ८७—धर्मद्रव्यका कार्य क्या है ?

उ.—धर्मद्रव्य चलतेहुए जीव पुद्गलोंके चलनेमें निमित्त रहता है जैसे चलती हुई मछलियोंके चलनेमें जल निमित्त रहता है। तथा जैसे—जल स्वयं नही चलता और न मछलियोंको चलनेमें प्रेरणा करता है परन्तु यदि जल न हो तो मछलियोंका गमन नहीं होता, इसी प्रकार धर्मद्रव्य स्वयं नहीं चलता और न जीव पुद्गलोंको चलनेमें प्रेरणा देता है परन्तु यदि धर्म द्रव्य न हो तो जीव पुद्गलोंका गमन नहीं होता इसीसे धर्मद्रव्यका कार्य गतिहेतुत्व है।

प्र· ८८—अधर्मद्रव्यका क्या कार्य है ?

उ.—अधर्म द्रव्य गमनके बाद ठहरते हुए जीव पुद्गलों को ठहरनेमें निमित्त रहता है, जैसे—ठहरते हुए मुसाफिरों को ठहरनेमें पेड़की छाया निमित्त रहती है तथा वृक्ष चलकर स्वयं नहीं ठहरता और न मुसाफिरोंको ठहरनेमें प्रेरणा देता है। परन्तु यदि वृक्ष न हो तो कड़ी धूपमें चलनेवाले धूपका प्रतिकार चाहनेवाले मुसाफिरोंका ठहरना नहीं होता। इसी प्रकार अधर्मद्रव्य स्वयं चलकर नहीं ठहरता और न जीव पुद्गलोंकी ठहरनेमें प्रेरणा करता है परन्तु यदि अधर्मद्रव्य न हो तो जीव पुद्गलोंका ठहरना नहीं होता इसी से अधर्म द्रव्यका कार्य स्थितिहेतुत्व है।

प्र, ८९—आकाश द्रव्यके असाधारण गुण अवगाहन-

हेतुत्वका कार्य क्या है ?

उ.—समस्त द्रव्योंका अवगाहन होनें देना आकाश द्रव्य का कार्य है। यही असाधारण गुणका कार्य है, यद्यपि समस्त द्रव्य स्वक्षेत्रकी अपेक्षा अपने २ स्वरूपमें ही हैं परन्तु पर-क्षेत्रकी अपेक्षा देखा जाय तो आकाशके प्रदेशोंके स्थानपर ही तो हैं बिना आकाशके कहीं भी नहीं हैं और आकाश यद्यपि अमूर्त है तथापि सबके अनुभवमें है कि आकाश यह एक द्रव्य है और उसका काम स्थान देनेका है, इसीसे आकाश द्रव्यका कार्य अवगाहन देना है और उसमें अवगाहनहेतुत्व गुण है।

प्र. ६०—काल द्रव्यके परिणमनहेतुत्व गुणका कार्य क्या है।

उ.—जीव, अजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और स्वयं काल भी छहों द्रव्योंके परिणमनमें निमित मात्र होना काल द्रव्यका कार्य है। यद्यपि सब द्रव्य अपने ही उपादान शक्तिसे परिणमते हैं कोई पदार्थ किसी पदार्थको लेकर साथ नहीं परिणमता तथापि परिणमते हुए जीव पुद्गल आदिके परिणमनमें काल द्रव्य निमित्त है।

प्र. ६१—जीवका यथार्थ स्वरूप क्या है ?

उ.—जीवका अर्थात् जीवके गुणोंका सहज परिणमन होनेके कालमें भाव से विज्ञात जो सहज भाव है वह जीवका

स्वरूप है ।

प्र. ६२—फिर जीवोंका असहज परिणमन क्यों हो रहा है ?

उ.—जीवमें व पुद्गलमें विभाव शक्ति है उसके कार्य कारण निमित्तसे यह विभाव परिणमन हो रहा है ।

प्र. ६३—विभाव शक्ति किसे कहते हैं ?

उ.—विभाव शक्ति उसे कहते हैं, जिसके कारण दूसरे द्रव्यके सम्बन्ध होनेपर विभाव परिणति हो सके ।

प्र. ६४—दूसरे द्रव्यके सम्बन्धके अभावमें विभाव शक्ति क्या कार्य करती है ?

उ.—शुद्ध अवस्थामें विभाव शक्तिका स्वभाव परिणमन रहता है ।

प्र. ६५—परिणमनका कारण क्या है ?

उ.—परिणमनके कारण २ हैं, १—उपादानकारण २—निमित्त कारण ।

प्र. ६६—उपादान कारण क्या है ?

उ.—जिस द्रव्यमें कार्य होता है, पूर्वपर्याय परिणत वह द्रव्य उपादान कारण है ।

प्र. ६७—निमित्तकारण किसे कहते हैं ?

उ.—जिसमें कार्य होना है (उपादानद्रव्य) उस द्रव्यसे पृथक् अन्य वे सब पदार्थ जिनकी अनुपस्थितिमें कार्य नहीं

हो उन्हें निमित्त कारण कहते हैं ।

प्र. ९८—क्या कोई कार्य निमित्त बिना भी हो सकता है ?

उ.—नहीं, परिणमनका सामान्य निमित्तभूत कालके अतिरिक्त कोई द्रव्य ऐसा नहीं जिनका परिणमन निमित्त बिना होता हो ।

प्र. ९९—परिणमनमें निमित्त कितने पदार्थ तक होते हैं ?

उ.—सबके परिणमनमें कालद्रव्य तो निमित्त होता ही है और विभाव परिणमनमें अनियत अनेक निमित्त होते हैं । जैसे घट कार्यमें दण्ड चक्र चीवर कुम्हार आदि । व जीवके परिणमनमें कर्म शरीर बाह्य पदार्थ आदि ।

प्र. १००—जीवके मोक्षमें क्या २ निमित्त हैं ?

उ.—मोक्ष जीवके स्वभाव परिणमनकी अवस्था है स्वभाव परिणमनमें कालद्रव्यके अतिरिक्त अन्य निमित्त नहीं होता जैसे धर्म अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य आदि जिनका स्वभाव परिणमन ही है उनको कालातिरिक्त अन्य कोई निमित्त नहीं हैं ।

प्र १०१—जब जीव मोक्षके उपायमें चलता है तब क्या २ निमित्त होते हैं ?

उ.—मनुष्यभव, वज्रऋषभनाराच संहनन आदि

अनेक निमित्त हैं।

प्र. १०२—तब तो जीवको मोक्षकेलिये सब निमित्तोंको जुटानेमें लगना चाहिये ?

उ.—नहीं, पराश्रित दृष्टि संसारका कारण है, मोक्ष-गामीका कार्य तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है उसको यह सब निमित्त मिल ही जाते हैं।

प्र १०३—जब पर्याय संहनन आदि निमित्त पड़ते हैं तो इनके जुटानेमें हानि क्या है, लाभ ही है ?

उ.—जैसे पुण्यकी आशासे पुण्यका बंध नहीं होता उसी तरह इनके जुटानेकी इच्छा व प्रयत्न करनेपर ये नहीं जुटते, मोक्षमार्गमें चलनेवाले अर्थात् ज्ञानमय आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण करनेवाले आत्माको ये सब निमित्त प्राप्त हो जाते हैं।

प्र. १०४—जब निमित्तके बिना कार्य नहीं होता तब निमित्तका लक्ष्य करना ही उचित है ?

उ.—कार्यतो उपादानमें होता है। निमित्त तो अनेक भी हों पर उनका कोई सा भी गुण उस पदार्थमें नहीं पहुंच सकता जिस पदार्थमें कार्य होरहा है, और न कोई ऐसा अन्य गुण उत्पन्न होता है जो उपादान भूत द्रव्यमें न था और नया आवे। सर्व द्रव्य स्वयं अपने गुणोंसे परिपूर्ण हैं, जीव पुद्गलमें विभाव शक्ति होनेसे निमित्तोंकी उपस्थितिमें

उनके गुणोंका ही विविध परिणमन होता रहता है। निमित्त के लक्ष्यसे जीवमें औपाधिक परिणमन होता है और स्वाश्रित दृष्टिसे औपाधिक परिणमन दूर होने लगता है। अतः लक्ष्य स्वका होना ठीक है।

प्र. १०५—वस्तु स्थिति तो ऐसी है जो निमित्त बिना कोई कार्य नहीं होता परन्तु आप दृष्टि, वस्तु स्थितिसे विरुद्ध कराना चाहते हैं ?

उ.—आत्माका शुद्ध परिणमन, पर निमित्त रहकर भी परके अलक्ष्यसे होता है यह भी एक वस्तु स्थिति है अथवा २ बातें हैं——१ तो वस्तु स्थिति (प्रमाणदृष्टि) दूसरी हित दृष्टि। वस्तुस्थिति यह ही है कि निमित्त बिना कोई कार्य नहीं होता और निमित्तकी किसी भी परिणतिसे नहीं, अपनी ही परिणतिसे होता परन्तु हित दृष्टि यह है जो पर अलक्ष्य हो, स्वही लक्ष्य हो अथवा लक्ष्य अलक्ष्यका विकल्प ही न हो, निज सहज परिणमनका अनुभव रहे वहाँ आत्माका हित है।

प्र. १०६—निमित्त नैमित्तिक किसे कहते हैं ?

उ.—जिस उपादानमें जो कार्य किसी अन्य द्रव्यके निमित्तसे होता है वह निमित्तसे होता है वह नैमित्तिक कहलाता है और जो पदार्थ निमित्त हुए हैं वे सब निमित्त हैं।

प्र. १०७—इसे दृष्टान्तपूर्वक समझाइये?

उ.—जैसे जीवमें क्रोध, किसी पुरुषके व्यवहार के कारण होता है तब क्रोध तो नैमित्तिक हुआ, और वह पुरुष निमित्त हुआ अथवा कर्मके उदयसे क्रोध हुआ, सो कर्म निमित्त हुआ और क्रोध नैमित्तिक हुआ, इसी प्रकार क्रोध करनेसे जो कर्म बधते हैं वह कर्म बंध नैमित्तिक हुआ और क्रोधी आत्मा निमित्त हुआ।

प्र. १०८—निमित्त पहले होता है या नैमित्तिक ?

उ.—दोनों एक साथ होते हैं—जैसे पिता पुत्र दोनों संज्ञायें एक कालमें होती हैं, जब तक पुत्र पैदा नहीं होता तब तक पुरुषको पिता नहीं कहा जाता है, पिता वह तभी कहा जाता है जब पुत्र उत्पन्न होता है अथवा जैसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान एक साथ होते हैं ज्ञान पहले भी था परन्तु सम्यक् संज्ञासहित ज्ञान सम्यग्दर्शनके साथ ही हुआ, उसीप्रकार क्रोध प्रकृतिका उदय क्रोध कषायमें निमित्त है सो जिस समय क्रोधप्रकृतिका उदय है उसी समय क्रोध कषाय है, और वह क्रोध कषाय अन्य प्रकृति के बंधका निमित्त है सो जिस समय क्रोधकषाय हुआ उसी समय अन्य प्रकृतिका बंध हुआ।

प्र. १०९—जब निमित्त और नैमित्तिक एक साथ होते हैं तब यह व्यवस्था कैसे हो कि यह निमित्त कहलाया,

यह नैमित्तिक है ?

उ.—दीपक प्रकाश एक साथ होने पर भी यह क्यों नहीं माना जाता कि इन दोनोंमें दीपक कारण और प्रकाश कार्य है ! सभी लोग निर्विवाद कहते हैं—कि दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है—इसी तरह कर्मोदय और कषाय एक साथ है तथापि कर्मोदय निमित्त कारण है और कषाय नैमित्तिक भाव है तथा कषाय व कर्मबंध एक साथ होनेपर भी कषाय निमित्त कारण है कर्मबंध नैमित्तिक है ।

प्र. ११०—इसकी पहिचान क्या है कि यह निमित्त है और यह नैमित्तिक है ?

उ.—निमित्तभूत द्रव्य तो नैमित्तिकभावके बिना भी किसी परिस्थितिमें रहता है परन्तु नैमित्तिकभाव कभी भी निमित्तकी उपस्थिति बिना नहीं होता । जैसे कितनी ही प्रकृतियोंका उदय बना रहता है पर उनका कार्य नहीं देखा जाता । जैसे किसी भी गतिमें अन्य गति आदिका या उदयाभावीक्षय वाली प्रकृति का उदय है पर कार्य नहीं होता कितने ही जगह कषायादि भाव रहते हैं पर उनका मुख्य कार्य नहीं देखा जाता (जैसे लोभ कषाय १०वें गुणस्थानमें है पर लोभका बंध नहीं होता) अथवा कर्म अपनी सत्तामें रहते हैं उदय उदीरणाकी अवस्था बिना

उनका कार्य नहीं देखा जाता, परन्तु नैमित्तिकभाव (कषाय) कभी भी कर्मोदयके बिना नहीं होता तथा कर्मबंध कभी भी कषाय बिना नहीं होता। केवल योगसे भी बंध होता है परन्तु वहां स्थिति बंध व अनुभाग नहीं होता, इस कारण उसे यहाँ अविवक्षित कर दिया है। यदि प्रकृतका मेल करें तो वह आश्रव भी योगनिमित्तज हुआ।

प्र. १११—जीवके विभावमें कर्मका उदय निमित्त होता है अन्य परमाणु निमित्त नहीं बनते इसका कारण क्या है ?

उ.—कर्ममें निमित्तपनेकी शक्ति है अन्य परमाणुओं में निमित्तपनेकी शक्ति नहीं इसलिये जीवके विभावमें कर्म का उदय निमित्त होता है।

प्र. ११२—जब कर्ममें निमित्तपनेकी शक्ति है तब अपनी शक्तिसे कर्म जीवको रागी द्वेषी बनाता होगा ?

उ.—निमित्तपनेकी शक्ति है इसका अर्थ यह है जो निमित्त होता है तो यह ही होता है इसका यह अर्थ नहीं कि कर्म आत्माको परिणमाता है कर्म निमित्त है आत्मा स्वयं ही परिणमता है।

प्र. ११३—कहीं २ यह वर्णन आता है कि निमित्त सहाय करता है प्रेरणा करता है साचिव्य करता है आदि इससे तो निमित्तका स्वातंत्र्य बहुत कुछ सिद्ध होता है।

उ.—यह सब निमित्त और उपादानके संयोगके तारतम्यका वर्णन करने वाले वर्णन हैं इससे यह सिद्ध नहीं करना चाहिये कि निमित्त अपने परिणमनमें स्वतंत्र है।

प्र. ११४—निमित्त क्या सभी उदासीन होते हैं या प्रेरक भी होते हैं।

उ.—उपादानपर दृष्टि रखकर देखें तो निमित्त सभी उदासीन हैं, पर निमित्तपर दृष्टि रख कर देखें तो बहुत से निमित्त प्रेरक प्रतीत होते हैं, इस प्रेरकताका भी तात्पर्य यह है जो अपनी ही क्रिया में परिणमते हुए निमित्त, उपादान की सन्निधिमें रहते हैं।

प्र. ११५—जब निमित्तमें निमित्त होनेकी शक्ति है तब वह बलात्कार करने वाला क्यों नहीं कहा जाता। लोकमें भी बहुतसे आदमी बलात्कार्य करने वाले देखे जाते हैं, अग्नि पानीको गरमकरती है चुम्बक लोहेको खींच लेता है?

उ.—शक्ति दोनोंमें है जलमें गर्म होनेकी शक्ति है, अग्निमें गर्म होनेमें निमित्तपनेकी शक्ति है, जब इन दोनों का यथाविध संयोग हो जाता है तब जलका गर्म होना रूप कार्य होता है वहां भी अग्नि अपने गुणोंमें परिणमती हुई जलकी सन्निधिमें है, अग्नि अपना गुण जलके गुणोंमें प्रक्षेप नहीं करती। इसी प्रकार चुम्बकमें आकर्षक शक्ति

है लोहेमें आकृष्य शक्ति है दोनोंका यथा विध सामीप्य होनेपर लोहेका खिच जाना रूप कार्य होता है वहाँ चुम्बक अपने गुणोंमें परिणमता हुआ रहता है लोहा अपनी क्रियामें परिणमता हुआ रहता है, चुम्बक अपना कोई गुण लोहेके गुणोंमें प्रक्षेप नहीं करता।

प्र. ११६—क्या तापके निमित्त बिना जल गर्म हो जाता है या चुम्बक आदि के बिना लोहेका खिचना हो जाता है ?

उ.—नहीं होता, तथापि निमित्त, उपादानके स्वरूपसे बाहर ही रहता है स्वरूपमें स्पर्श भी नहीं करता है, बाह्य संयोग मात्र होता है।

प्र. ११७—निमित्तभूत द्रव्यका उपादान भूत द्रव्यके साथ संयोग या समोपता रूप संबध सही, फिर भी यह संबंध तो उपादानमें कुछ करता ही है ?

उ.—निमित्तके अभावमें उपादानमें विभाव परिणमन नहीं हुआ, इसे निमित्तका करना कहना है तो कहो, चतुष्टयको देखो तो दोनों अपने २ चतुष्टयमें परिणमते रहे हैं। निमित्तनैमित्तिक संबंध तो बहुत ही विलक्षण संबंध है, जहाँ यह प्रतीत होता है कि निमित्त कुछ नहीं करता हुआ भी करता है।

प्र. ११८—जैसे निमित्तमें निमित्तरूप होनेकी शक्ति

है इसी तरह उपादानमें भी कोई शक्ति होती है ?

उ—उपादानमें भी उस कार्य रूप होनेकी शक्ति है जिसे योग्यताके नाम से भी कहते हैं वह योग्यता सामान्य-विशेषात्मक है—सामान्य परिणमनकी शक्तिको सामान्य योग्यता या ओघशक्ति और विशेष (विवक्षित) परिणमनकी शक्तिको विशेष योग्यता या समुचिता शक्ति कहते हैं, सामान्य योग्यता नित्य है विशेष योग्यता अनित्य है।

प्र. ११९—सामान्य योग्यता नित्य है यह कैसे जाना?

उ.—क्योंकि परिणमन रहित द्रव्य कभी भी नहीं रहता अतः उसकी मूलरूप योग्यता नित्य ही है।

प्र. १२०—विशेष योग्यता अनित्य है यह कैसे जाना?

उ.—किसी विवक्षित पर्याय होनेके बाद वह विवक्षित पर्याय कभी नहीं हो सकती तथा विवक्षित पर्याय होनेके अनन्तर पूर्व समयवर्ती उपादानकी वह स्थिति न पहिले थी न आगे रहती अतः विशेष योग्यता अनित्य है।

प्र. १२१—निमित्तके मिलनेपर कार्य सिद्ध होता है तब विशेष योग्यता माननेकी क्या आवश्यकता है?

उ.—विशेष योग्यताके अभावमें यदि कार्य होने लगे तब निमित्त कारण जुट जानेपर सभी कार्य होजाना चाहिये, समवशरणमें सभी दिव्यध्वनि सुनते हैं, दर्शन करते हैं परन्तु सबको सम्यग्दर्शन नही हो पाता, इसमें कारण विशेष

योग्यताका अभाव है अतः विशेष योग्यता, व निमित्त कारण व विरोधी (प्रतिबंधक) कारणोंका अभाव इन तीनोंका समुदाय समर्थ कारण है इसलिये विशेष योग्यता होना आवश्यक है।

प्र. १२२—जब तीनोंका समुदाय कार्य करता है तब मोक्षमार्गमें स्वलक्ष्यको ही क्यों आदर दिया है निमित्तका भी तो खयाल करना चाहिये?

उ.—पर-पदार्थके संग्रह करने (मिलाने) के अभिप्राय विद्यमान होनेके समय आत्माकी न स्वानुभव परिणति है न ज्ञातृत्वपरिणति है न आत्मस्थिरतारूप परिणति है अतः हितके अर्थ यह बात आवश्यक है, जो परका लक्ष्य छोड़कर स्वलक्ष्य रखें, यह बात अन्य है जो राग बिना स्वयं सर्वपदार्थ प्रतिभासित हों सो वहाँ तो परलक्ष्य है भी नहीं। दूसरी बात यह है जो तीनोंका समुदाय समर्थकारण कहा उसमें विशेष योग्यता भी तो है यह विशेष योग्यता श्रेयोमार्गके लिये स्वलक्ष्यपरिणतिकी ही तो है। निमित्तकारण स्व स्व-सत्ता से हैं—वे रहें किन्तु उनपर किया हुआ उपयोग स्व-लक्ष्यसे च्युत है।

प्र १२३—जैसे परलक्ष्य करना कषाय सहित उपयोग का कार्य है उसी प्रकार परलक्ष्यसे हटाकर स्वलक्ष्यमें उपयोग लगाना यह भी कषायका कार्य है, फिर हितका मूल कैसे

हुआ?

उ.—स्वलक्ष्य करना तो अवश्य परलक्ष्यसे हटाकर स्वमें लक्ष्य करनेको कहते हैं, सो ऐसी प्रवृत्ति मंदकषाय मूलक है, तथापि उसके बाद स्वलक्ष्य रहजाना रूप कार्य कषायका कार्य नहीं है, वह तो सहज परिणतिका विकास है तथा स्वलक्ष्य होना इसका तात्पर्य उस दशासे है जहां राग द्वेषकी प्रवृत्ति न हो क्योंकि राग द्वेषकी प्रवृत्तिके अभावमें स्वका अनुभव है, तथा स्वसे तात्पर्य सामान्य या आत्मासे है, सो सामान्यका लक्ष्य (लक्ष्य करना नहीं) सब ओरके लक्ष्यके अभावमें रह जाता है।

प्र. १२४—इस स्व कल्याणका साधक तप व्रत आदि हैं अथवा नहीं ?

उ.—बाह्य तप व्रत उपचारसे साधक माने गये हैं क्योंकि इन स्थितियोंसे गुजरनेवाले प्राणी अपने सहज विकासद्वारा निश्चय तत्त्वको पा लेते हैं।

प्र १२५—तब क्या तप व्रतसे धर्म नहीं होता है?

उ.—धर्म, आत्माकी मोह क्षोभ रहित परिणतिको कहते हैं, बाह्य तप व्रत तो मन वचन कायकी चेष्टा है तप व्रतके भाव भी पुण्यके निमित्त हैं, निश्चय सम्यग्दर्शन रूप अनुभवन धर्म है।

प्र. १२६—तब जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर,

निर्जरा, मोक्ष आदि नव पदार्थोंका श्रद्धान धर्म है क्या यह सत्य नहीं है?

उ.—भूतार्थसे जाने गये नव पदार्थ निश्चयसम्यग्दर्शन है, भूतार्थसे इन तत्त्वोंके जाननेपर एक शुद्ध आत्म तत्त्व ही प्रतिभासमान होता है। भूतार्थसे जाननेपर इन नवतत्त्वोंका भी लक्ष्य छूटकर एक आत्मतत्त्व ही रह जाता है। अतः सिद्ध है परसे व रागादिसे रहित एक निज चतुष्टयमें स्थित सहजभावरूप एकत्वका अनुभवन ही धर्म है क्योंकि वहाँ वस्तु अर्थात् आत्माके स्वभावका अनुभव है।

प्र. १२७—पूजा यात्रा दान आदि भी तो धर्म हैं उनकी उपेक्षा क्यों की जाती है?

उ.—धर्म तो मोह क्षोभ रहित निर्विकार परिणाम है द्रव्यपूजा द्रव्ययात्रा तथा द्रव्यदान तो आत्माका परिणाम नहीं तथा भावपूजा भावयात्रा भावदान ये आत्माके शुभ परिणाम हैं निर्विकार परिणाम नहीं, इसलिये वे व्यवहार धर्म हैं।

प्र. १२८—पूजा, दान आदि व्यवहार धर्म हैं यह तो ठीक है किन्तु वे निश्चयके साधक भी तो हैं?

उ.—निर्विकार परिणामका कारण व साधक वास्तव में देखा जाय तो विकार नहीं हो सकता, शुभभाव भी विकारी भाव है, हाँ यह बात अवश्य है जो प्रथम निर्विकार

परिणाम आनेसे पूर्ववर्ती समयमें शुभभाव होते हैं, निर्विकार परिणाम कषाय रहित अनुभवन है, शुभभाव मंद कषायका अनुभवन है, अशुभभाव अमंद कषायका अनुभवन है, तीव्र-कषायके अनंतर कषाय रहित अवस्था नहीं होती।

प्र. १२९–इस तरह तो धर्मभावका उपादान कारण शुभभाव ठहरा?

उ.—तो इस प्रकार सम्यग्दर्शनका कारण मिथ्यात्व भी होनेका प्रसंग आवेगा, यदि किसी विवक्षासे सम्यग्दर्शनका कारण अनंतरपूर्ववर्ती मिथ्यात्वपरिणामयुक्त द्रव्य कहो तो यहाँ भी कह लो परन्तु तत्त्वतः मिथ्यात्वमें सम्यक्त्वकी साधकतमता नहीं और न विकारीभावमें निर्विकार परिणामको साधकतमता है।

प्र. १३०—तब धर्मभावका उपादान क्या होगा?

उ.—आत्माका स्वभाव चैतन्य है, चैतन्यका पूरा आवरण हो ही नहीं सकता है (जैसे—सिद्धान्तका कथन है कि लब्ध्यपर्याप्तकनिगोद जीवके भी जो जघन्यतम ज्ञान है वह भी नित्योद्धार निरावरण ही है उसका आवरण कर्म होता ही नहीं) वह चैतन्यविकास तथा ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मके क्षय क्षयोपशमके निमित्तसे होनेवाले, विभावों व अविकासके अभावके, निमित्तसे जो—सहज चैतन्यका विकास हो वही विकास, विकासका उपादान ही

चला जाता है। अर्थात् कर्मोंके क्षयादिके निमित्तसे विभावों का अभाव होता है और विभावोंके अभावसे सहज प्रकट हुआ चैतन्यका विकास उत्तरोत्तर विकासका उपादान होता जाता है।

प्र. १३१—विकारीभावका उपादान क्या है?

उ.—विकारीभावका उपादान राग द्वेष मोहरूप अध्यवसानका लगाव है।

प्र. १३२—इसका कारण क्या है?

उ.—अध्यवसानभावोंका कारण वस्तुके असाधारण और स्थायी भावोंका अज्ञान है।

प्र. १३३—इस अज्ञानका कारण क्या है?

उ.—किसी भी विवक्षित अज्ञानदशाका कारण पूर्ववर्ती अज्ञानदशा है और उसमें निमित्त कर्मोदय है।

प्र १३४—इस अज्ञानका प्रारम्भ कबसे हुआ?

उ.—विवक्षित अज्ञानदशा पूर्व अज्ञानपर्यायके अनन्तर हुई, परन्तु अज्ञानकी संतति अनादिसे है। ऐसा नहीं है कि यह आत्मा पहिले शुद्ध था फिर किसी कारण से या अकारणक अशुद्ध हुआ हो।

प्र. १३५—वह विकारीभाव कितने समय तक रहता है।

उ.—राग द्वेष आदि विवक्षितअनुभाव्य विकारीभाव

अनवच्छिन्नधारासे कमसे कम अजघन्य अन्तर्मुहूर्ततक चलता है। इस विषयका स्पष्ट और सूक्ष्म विवेचन कषायप्राभृतके कालानुगम प्रकरणमें है।

प्र. १३६—पदार्थका परिणमन तो समय समयमें होता रहता है फिर क्या कारण है कि समयमात्रका रागपर्याय आदि अनुभवविकारक नहीं है?

उ.—यह बात तो ठीक है कि पदार्थका परिणमन प्रति समयमें होता है परन्तु विकारी कोई विभाव विकृतावस्थाकी दशा होनेसे विवक्षित संततिसे अन्तर्मुहूर्त तक रहता है, क्योंकि समयमात्रकी रागपरिणति ज्ञेय ही होती है, उपयोग में विकारी नहीं होती।

प्र. १३७—क्षणिकरागपर्याय भी तो औपाधिक है फिर अध्यवसायक क्यों नहीं।

उ.—जो एक समयमें परिणमन है वह विवक्षित विकारी विभाव नहीं है, उस अनुभाव्य स्थूल विकारका अंश है फिर भी अपने समयमें पूर्ण पर्याय है। तथा जैसे छद्मस्थका एक उपयोग कमसे कम अन्तर्मुहूर्तको होता है, वहाँ भी परिणमन समय समयका है इससे छद्मस्थका विवक्षित कार्यकारी वह उपयोग क्षणिक नहीं किन्तु अनित्य है। हाँ सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयसे क्षणिक है। वैसे ही उदित कोई कषायभाव कमसे कम क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके कालसे कुछ अधिक काल

तक व्युच्छिन्न नहीं होता फिर भी समय समयकी कषाय-पर्याय है इससे कुछ विवक्षितकार्यकारी वह अनुभाव्य विकार-भाव क्षणिक नहीं होजाता किन्तु अनित्य है। हाँ सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयसे क्षणिक है।

प्र. १३८—श्री धवलाके क्षुद्रकबंधके कालानुगमप्रकरणमें तो व्याघात और मरणके निमित्तसे एकसमयस्थितिक कषाय रहना लिखा है?

उ.—इस सम्बन्धमें धवला टीकाकार परमपूज्य श्री वीरसेनस्वामीने कषायप्राभृतकी जयधवला टीकामें स्पष्ट कर दिया है—प्रथम तो इस सम्बन्धमें आचार्योंकी दो मान्यतायें कहीं, फिर यह विवक्षाभेद है। सूक्ष्मविवेचनमें दोनों मान्यतायें मान्य हैं अर्थात् यह भी सत्य है कि व्याघात और मरणके निमित्तसे कषाय एकसमयस्थितिक भी रह जाती है तथापि यह अपवादमात्र है और भाव राग भाव-द्वेषकेही वर्णन करनेवाले कषायप्राभृतका कथन उपेक्षणीय नहीं है।

प्र. १३९—व्याघात व मरणकी अपेक्षासे ही सही, रागपर्याय तो एक समयकी होगई तब हम विकारीभाव को सर्वथा क्षणिक कहकर अपना समय व्यतीत करें तो क्या हानि है?

उ.—जब किसी कषायका प्रारम्भ होते ही व्याघात

होता है तब तो संख्यात आवलि व उससे कम या एक समयके कषायभावके बाद क्रोधकषायकी ही उत्पत्ति होती है उससे अच्छी बात क्या पाई? तथा ऐसा व्याघात प्रायः हो नहीं रहा। एवं मरण तो इस समय हम चर्चालुवोंका हो ही नहीं रहा। फिर बताओ इस समय रागपर्याय (जिसके प्रतिफल स्वरूप ये चेष्टायें हो रही हैं) एक समय मात्रके कैसे अनुभवमें हैं।

प्र॰ १४०—क्या अवद्धावस्थाकी दशामें और वृद्धावस्था की दशामें स्थितिकृत भेद है?

उ.—अवृद्ध और वृद्ध अवस्थाकी पर्यायोंमें स्थितिकृत ही भेद नहीं है किन्तु द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारों कृत भेद हैं। तथा हि—शुद्धपर्याय नहीं होती। शुद्धपर्याय अबृद्ध एक क्षेत्रमें होती है यदि दो द्रव्योंके प्रदेशोंका एकक्षेत्रावगाहबंधन हो तब नहीं होती। शुद्धपर्याय एक समयमें स्वतंत्र (सस्कार रहित) होती है फिर आगे इसी प्रकार प्रति समय होती रहती है यदि शुद्धपर्यायके अनुरूप अनुभवके लिये पूर्व पर्यायके संस्कार की अपेक्षा हो तब वह शुद्धपर्याय नहीं है। इसी प्रकार शुद्धपर्याय एक ही भावमें अर्थात् सम, अखंड या जघन्य (परमाणु अपेक्षा) भावमें होती है, विषम विविध भावोंमें नहीं।

वद्धअवस्थाकी पर्यायमें ऐसा नियम है— कि वृद्धपर्याय

दो (अनेक) द्रव्योंके संयोग होनेपर होती है केवल विभक्त एक द्रव्य रहनेपर नहीं होती। वद्धपर्याय दो क्षेत्रोंके बंधनमें होती है, केवल एक द्रव्यके ही प्रदेश रहें उसमें अन्यद्रव्यके प्रदेश सम्बद्ध न हो तब वद्धपर्याय नहीं होती। वद्धपर्याय संस्कार रूपमें दो (अनेक) समयोंमें चलती है, केवल एकही समय तक रहे और दूसरी विपक्ष जातिकी पर्याय आजाय ऐसी कोई वद्धपर्याय नहीं है। इसी प्रकार विविध, अनेक डिगरीके भावोंमें ही वद्धपर्याय होती है, एक सम अखंड भाव में वद्धपर्याय नहीं होती।

प्र. १४१—इसका क्या कारण है?

उ.—बंधन एकत्वको प्राप्त वस्तुमें नहीं होता। बंधन दो वस्तुवोंके—अर्थोंके संयोग होनेपर होता है। वस्तुका स्वरूप वस्तुका चतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) है। अतः वहां भी यह सुनिश्चित है कि २द्रव्य, २क्षेत्र, २काल, २भाव के संबंध—संस्कार होनेपर ही बंधन दशा है।

प्र १४२—उक्त प्रकरणका सारांश क्या हुआ?

उ आत्मामें प्रतिक्षण नवीन नवीन पर्यायका आविर्भाव है परन्तु रागादि विकृत पर्यायोंका जो रागीकी बुद्धिमें अनुभव है वह कमसे कम क्षपकसूक्ष्मसाम्परायकालसे कुछ अधिक काल तकके एकजातिक कषायपर्यायोंके समूहरूप एक कषाय भावका संस्कारवश अनुभव होता है। तथा यद्यपि

समय समय परिणमन होता रहता है तथापि औपाधिक भावकी यह व्यञ्जना समय मात्रमें नहीं होती। इसलिये अनुभवमें आनेवाला विकार भाव क्षणिक नहीं, किन्तु अनित्य है।

प्र. १४३—तब तो कल्याण कठिन हो जायगा एक समयकी रागपर्याय मान लेनेमें तो यह बात थी कि एक समयकी रागपर्यायका लक्ष्य हटा कि वह दूर हो जाती?

उ.—भाई! बद्ध द्रव्यकी स्थितियोंपर विचार चल रहा है बद्ध जीवका उपयोग भी तो कमसे कम सूक्ष्म अन्तर्मुहूर्त तक तो रहता ही है, घबड़ानेकी बात तो तब थी जब कि यहाँ उपयोग समय समय मात्रको होकर व्युच्छिन्न हो जाता इन्हीं कारणोंसे तो गुणस्थानोंका व पूर्वपर्यायसे निवृत्त होकर अपूर्व पर्याय पाने तथा विसंयोजन क्षपण आदिके उद्यमोंका काल अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं कहा गया।

प्र॰ १४४—रागसे लक्ष्य हटानेका क्या उपाय है?

उ.—आत्माके सहज स्वभावका लक्ष्य होना ही रागके अभावका उपाय है।

प्र. १४५—आत्माका सहज स्वभाव कैसा है?

उ.—आत्माका सहज स्वभाव 'जानना' है 'प्रतिभास' है क्योंकि चैतन्यके अतिरिक्त जो राग द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं वे सब नैमित्तिक हैं, सहज स्वभाव तो वह है जो पर

के संयोग आदि निमित्तकी अपेक्षा न रखकर स्वयं ही असंयुक्त अबद्ध एकत्वभावमें विकसित हो ।

प्र· १४६ – राग आदि भाव, उत्पन्न होनेमें परकी क्या अपेक्षा रखते हैं? क्योंकि वस्तुस्वातंत्र्यका यह नियम है जो कि कोई भी पदार्थ किसी अन्य पदार्थका कुछ नहीं कर सकता है ।

उ.—कोई भी पदार्थ किसी भी पदार्थको नहीं कर सकता है इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावसे परिणमता है दूसरा कोई भी द्रव्य अपना द्रव्य क्षेत्र काल भाव सौंपकर उसे परिणमाता हो ऐसी बात नहीं है क्योंकि जो पदार्थ स्वयं नहीं परिणमता उसे कोई भी नहीं परिणमा सकता और परिणमते हुएको परिणमावे ही क्या? परन्तु पदार्थके सहज स्वभावके विरुद्ध परिणमन अन्य अनुकूल निमित्तोंकी उपस्थितिमें ही होते हैं, निमित्तोंके अभावमें नहीं होते ।

प्र· १४७—यदि बाह्यनिमित्तोंका संयोग हो तब कार्य होवे ऐसा माना जावे तब तो एक यह दोष है कि द्रव्यका परिणमन पराधीन होगया और दूसरा यह दोष होगा कि सर्वज्ञ देवने कलको किसी पर्यायका जाना और यदि निमित्त का संयोग न हो सका तो उसका ज्ञान झूठा हो जावेगा?

उ.—बाह्य निमित्तोंकी उपस्थितिमें भी वह पदार्थ

अपने चतुष्टयके पर्यायसे परिणमता है यही स्वतन्त्रता है अतः प्रत्येक द्रव्य स्वाधीनहै उनका परिणमन भी स्वाधीन है।

सर्वज्ञदेवने सब जाना जैसे कार्य जाना वैसे निमित्त-योग भी जाना अतः यह प्रश्न ही नहीं रहता कि यदि निमित्तोंका सबंध न मिला तब कार्य रुक जावेगा या सर्वज्ञ का ज्ञान झूठा हो जावेगा क्योंकि निमित्तकी उपस्थिति भी निश्चित है और नैमित्तिक पर्याय भी निश्चित है।

प्र १४८—इस प्रकार यदि किसी कार्यके लिये निमित्त की आधीनता नहीं आती तो कमसे कम सर्वज्ञके ज्ञानकी आधीनता तो दोनोंको हो गई?

उ.—किसीको भी किसीकी आधीनता नहीं आती क्योंकि जैसे पदार्थ अपने चतुष्टयसे परिणमते हैं वैसे ही सर्वज्ञभी अपने चतुष्टयसे परिणमते हैं। जानने मात्रसे वस्तु को कार्यकी पराधीनता नहीं होती। ऐसा नहीं है कि सर्वज्ञ के जाननेके कारण वस्तुको परिणमना पड़ता है या वस्तुके परिणमनेके कारण सर्वज्ञको जानना पड़ता है सब स्वरसतः परिणमन करते हैं।

प्र· १४९—ज्ञान और पदार्थ स्वरसतः परिणमन करते हैं यह भी ठीक है परन्तु परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव तो होगा?

उ.—पदार्थोंके परिणमनमें ज्ञान निमित्त भी नहीं है

प्रत्युत ज्ञानके परिणमनमें पदार्थ उससे अवद्ध और असंयुक्त होते हुए उदासीन निमित्त हैं। कल्पना करो यदि सर्वज्ञ न होता तब क्या पदार्थोंके परिणमन न होते? परन्तु यदि ज्ञेय-पदार्थ न होते तो तद्विषयक ज्ञेयाकार ज्ञानका परिणमन नहीं होता क्योंकि पदार्थ सत् हैं सत् ज्ञेय है फिर भी ज्ञान स्वयं सत् है और उसका परिणमन उसकी ही स्वतन्त्रतासे उस पर्यायरूपमें है।

प्र. १५०—सूक्ष्म-शुद्धनयसे पदार्थोंके, आत्माके विभाव या स्वभाव परिणमनके कारण क्या हैं?

उ.—किसी भी अवस्थाका सूक्ष्म-शुद्धनयसे कोई कारण नहीं है प्रत्येक पर्याय अपने अस्तित्वसे विकसित है इस विवक्षाको सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय कहते हैं।

प्र. १५१—रागपर्यायकेलिये पूर्ववर्ती रागपर्याय तो कारण होता ही होगा?

उ.—पूर्वपर्याय जो नष्ट है वह कैसे कारण हो सकता, शुद्ध ऋजुसूत्रनय-शुद्धनिश्चयपर्यायार्थिकनयसे वर्तमान एक पर्यायका ही ग्रहण है। ऐसे भिन्नका ग्रहण है—जिसका कि फिर अभेद रहे अर्थात् भेद न हो सके।

प्र. १५२—फिर तो उस ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा एक रागपर्याय समयमात्रकी होगी।

उ.—होगी क्या, प्रत्येक अखंड एक पर्याय एक समय

मात्रकी ही होती है क्योंकि जितने समय हैं द्रव्यकी वर्तना भी उतनी ही हैं। हाँ जो रागादि विभाव उपयोगमें विकार रूपसे अनुभवमें आता है वह अनेक समय तकके रागपर्यायों का स्पद्र्धक है।

प्र. १५३—तब तो ऋजूसूत्रनय एक समयवर्ती पर्यायको ग्रहण करता है यह कथन गलत होजायगा?

उ.—नहीं ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक पर्यायमात्रको ग्रहण करता है वह एकपर्याय—जिसका और भेद न हो सके उसे जानता है, स्वभावपर्याय एक एक ही समयमात्रकी स्थिति रखते हैं वे भी ऋजुसूत्रनयके विषय हैं और विकारी रागादि असंस्कृत जो निरवच्छेद अल्प अन्तर्मुहूर्तसे ज्यादह नहीं होते (जिनके निमित्तभूत द्रव्यस्पर्द्धकोंका भी उदय अन्तर्मुहूर्त तक रहता) वे भी ऋजुसूत्र नयके विषय हैं। अथवा उपयोगमें ज्ञेय क्षणिक राग परिणमन ऋजुसूत्रनयका विषय है।

प्र. १५४—फिर तो अनेक समय रहने वाली पर्याय सहेतुक ही होती है अहेतुक क्यों कहते हो?

उ.—विभावपर्याय तो सहेतुक है ही (परपरिणति लेकर नहीं) अन्यथा वह वस्तुस्वभाव बन जायगा। परन्तु ऋजु-सूत्रनय वर्तमानपर्याय मात्रको ग्रहण करता है उसकी दृष्टि न कालापेक्षया व्यापक है न अन्य द्रव्योंका विषय करता है

अतः वह पर्याय भी कारण रहित है और इसी प्रकार कार्य रहित भी है विशेष्य विशेषणभाव रहित भी है।

प्र. १५५—यदि हम विकारी रागभावको ही समयवर्ती जाने तब हानि तो कुछ है ही नहीं प्रत्युत दृष्टि ही विशुद्ध होगी?

उ.—भाई विकारी भावपर उपयोग लगाते हुए आप विशुद्धि चाहते हैं सो ठीक नहीं—क्योंकि समय मात्रकी परिणमनपर की दृष्टिमें रागपर्याय ही नहीं रहती जैसे एक द्रव्य की दृष्टिमें दूसरा द्रव्य संयुक्त नहीं अखंड निज प्रदेशों की दृष्टिमें अन्य प्रदेश सम्बन्ध नहीं एक भावकी दृष्टिमें विषमता नहीं इसी प्रकार एक समयकी परिणतिकी दृष्टिमें किसी भी प्रकारका विभाव अर्थपर्याय नहीं ठहरता। दृष्टि विशुद्ध बनानेके लिये पर्याय कुछ रहो उपयोग शुद्धभावना से युक्त होना चाहिये, फिर निकट भविष्यमें विकास शक्ति के अनुरूप स्वयं हो जावेगा।

प्र. १५६—रागपर्यायका जो पहिले समयमें परिणमन दूसरे तीसरे आदिमें है या नया नया? यदि वह ही है तब तो अन्तर्मुहूर्तको कूटस्थ अपरिणामी हो गया, सो तो है नहीं, यदि नया नया परिणमन है तब समय समयका पर्याय सिद्ध होगया?

उ.—रागपर्यायका प्रतिसमय परिणमन है और जो एक

समयका परिणमन है वह दूसरे समयका नहीं कहलाता, इस दृष्टिसे तो प्रतिसमय परिणमन भिन्न है परन्तु उक्त कथनोंका तात्पर्य यह है कि रागका अभाव अर्थात् वीतरागता, एकसमयस्थितिक रागके अनन्तर न हुआ न होगा प्रत्युत अवायज्ञानोपयोगसे भी विशेषाधिक समयस्थितिक रागपारम्पर्यके बाद जब वीतरागता होनी हो, होती है, परन्तु रागके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारकी दृष्टि रखनेसे नहीं होती।

प्र १५७—सो किस प्रकार?

उ.—क्रोधकषायका तो व्याघात होता नहीं क्योंकि व्याघातसे क्रोधही होता शेष कषायोंका व्याघात होनेसे एकसमयस्थितिक वह कषाय होती सो जिस कषायके बाद महाक्रोध होता, उस समय समयस्थितिककषायके बाद वीतरागता कहां? एवं जिस मरणके बाद जन्म होता वहाँ भी कभी-कभी किसीके एकसमयस्थितिक कषाय होती उससे अनन्तर भी कल्याण नहीं, अतः जो बात होना नहीं, न हुई, न होगी वैसा विचार करके सम्यग्ज्ञान नहीं होता अतः सर्वथा अनन्वय व्यतिरेकी निरपेक्ष समयमात्रका ही अनुभूयमान रागमान कर 'बस इस एकसमयमात्रका राग न होने दो' इस भावना और उत्साहके बजाय रागपर्याय मैं नहीं हूँ मेरा सहजस्वरूप चैतन्य है इस शुद्ध तत्त्वकी भावना

होना उचित है।

प्र. १५८—क्या यह बात सत्य नहीं है? कि एक समय का भी रागका क्षय हो जाय तो संसार नहीं रहता?

उ.—यह बात सत्य है परन्तु वह क्षयका समय संख्यातावलिस्थितिक कषायके अनन्तर होता है। अथवा इसही भावको इन शब्दोंमें कहना चाहिये कि जब कर्मोदय समय समय होता है तब राग भी समय समय होता है परन्तु उस विवक्षित रागकी अनिवार्य परम्परा व्याघात, मरणके अतिरिक्त संख्यातावलि तक रहती ही है क्योंकि केवल एक समयवर्ती राग निरपेक्ष होकर छद्मस्थके उपयोगका अनुभाव्य नहीं हो सकता फिर कूटस्थनित्यवादी की तरह सर्व आत्मा अनादिसे शुद्धोपयोगी ही हुए परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि विकारसे ही यह संसार है तभी धर्म व्यवस्थाप्य है।

प्र· १५६—उपयोगकी यह अशक्ति कैसे हुई?

उ.—समय समहकी अशुद्धावस्था अनुभवमें रहनेसे उपयोगकी इस छद्मस्थताके कारण अशक्ति है।

प्र. १६०—तब तो अन्योन्याश्रयदोष होगया कि जब उपयोगकी अशक्ति हो तब समयसमूहकी अशुद्धावस्था अनुभाव्य हो और जब समय समूह की अवस्था अनुभाव्य हो तब उपयोगकीअशक्ति हो?

उ.—यहां इतरेतराश्रय दोष नहीं हो सकता क्योंकि अनादि संततिसे ऐसा ही निमित्तनैमित्तक संबन्ध है।

प्र. १६१—जब दो समयोंमें एक परिणमन नहीं होता तब युक्ति प्रमाण देकर अनेक समयोंका एक परिणमन सिद्ध करनेकी निष्फल चेष्टा क्यों की जारही है?

उ.—यह चेष्टा निष्फल नहीं है व्यवहारनय या स्थूल ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा यह कथन है। जो सर्वथा एक समय का ही राग मानकर बंधमोक्षव्यवस्था मिटा देनेका मन्तव्य है उससे कोई सिद्धि नहीं है।

प्र. १६२—तब फिर क्या करना चाहिये?

उ.—व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ होते हुए निश्चयनयके विषयभूत चैतन्यस्वभावके उपयोगके द्वारा मोहादि अशुद्धभावोंसे दूर रहना कर्तव्य है क्योंकि पर्याय-बुद्धि ही दुःखका मूल है।

प्र. १६३—सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय व शब्दनय आदि नयोंसे रागका कैसा स्वरूप है इस विषयको अनेक चर्चावोंसे स्पष्ट कीजिये?

उ.—रागपर्याय अपनी सत्तासे है स्वयं निष्पन्न है जो एक समयका राग है वह पूर्व समयमें नहीं और न उत्तर समयमें है।

प्र. १६४—रागकी रचना किससे और किसमें होती है?

उ.—रागद्वेष आदि पर्यायोंकी पर्यायके समयमें उसही पर्यायके अंशोंसे ही उस पर्यायमें रचना होती है अन्य कोई कारण नहीं है और न आधार है।

प्र. १६५—वह रागपर्याय आती कहाँसे है?

उ.—'रागपर्याय कहाँसे आती है' यह प्रश्नही इस नयकी दृष्टिमें नहीं हो सकता। राग रागमें है, रागका तो जो स्वरूप व स्वकाल है वहां ही राग है। राग पूर्व-पर्याय रूप उपादानसे नहीं होता, क्योंकि जब राग है तब पूर्व पर्याय नहीं जब पूर्वपर्याय है तब विवक्षित राग नहीं।

प्र. १६६—राग नैमित्तक तो अवश्य होगा?

उ.—राग नैमित्तक नहीं है क्योंकि जो नैमित्तिक हैं वे सब राग नहीं और जो रागशक्ति है वह नैमित्तिक नहीं। दूसरी बात यह है—रागको नैमित्तिक विशेषण लगा ही नहीं सकते क्योंकि ये दोनों जिन्हें विशेष्य विशेषणभावसे प्रस्तुत किया है वे परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न? यदि भिन्न हैं तब संबंध ही नहीं हो सकता अन्यथा किसीका कोई भी विशेषण बन बैठे। यदि अभिन्न हैं तब एक अर्थ ही रहा फिर विशेष्य विशेषणका व्यवहार ही कैसे? तीसरी बात यह है—कि मान्यनिमित्तमें राग है नहीं, आवे कैसे? चौथी बात यह है कि किसीके गुण दोष किसीमें संक्रान्त नहीं होते।

प्र. १६७—समयमात्रवर्ती रागकी क्या परिस्थिति है?

उ.—समयमात्रवर्ती राग रज्यमान रवत है इसलिये समयमात्रवर्ती राग अन्य समयोंकी परम्परा बिना भोगमें नहीं आता। इसलिये समयमात्रकी परिणतिकी दृष्टिमें राग अनुभवमें नहीं आता किन्तु चैतन्यस्वभाव अनुभवमें होता है।

प्र. १६८—चैतन्य स्वभाव तो अनादि निधन है जो नैगमनयका विषय है तथा समयवर्ती पर्याय सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय का विषय है इनमें तो महान् अन्तर है फिर दोनोंका उद्देश्य व फल एक कैसे होगया?

उ.—नैगम और ऋजुसूत्रनय दोनोंके उत्कृष्ट विचारों से उपयोगका विषय अखण्ड हो जाता है, शुद्ध नैगमनये तो ऐसे विशालको देखता है जिसका कोई अंश हो ही न सके अर्थात् त्रैकालिक स्वभाव। सूक्ष्मऋजुसूत्रनय ऐसे सूक्ष्म अंशको (अखंडको) विषय करता है जिसका और कोई खंड हो ही न सके।

प्र. १६९—फिर तो अखंड स्वभावमें पहुंचनेके लिये जैसे नैगमनय मार्ग है वैसे ही ऋजुसूत्रनयहै तब आपने पहिले समयवर्ती रागका निषेध क्यों किया?

उ.—पहिले अनुभाव्य रागके विषयमें वर्णन किया

गया था जो विचार, अनुभाव्य (विकारी) रागको समय मात्रवर्ती मानते हैं उसका निराकरण था। समयवर्ती राग का निषेध नहीं था क्योंकि परिणमन समय समयका न हो तब अन्तर्मुहूर्तमें भी परिणमन नहीं हो सकता। हां! वहाँ यह बात बताई थी कि निरपेक्ष समयमात्रवर्ती राग वह राग नहीं है जिसे अनुभूत राग कहा जा सके।

प्र १७०—अनुभाव्य राग समयवर्ती न हो सके यह तो बात विकारस्वादकी है किन्तु राग तो समय समयवर्ती होते हैं।

उ.—होते हैं, और अपनेको अविकाररूप अनुभवके लिये यह भी मार्ग है जो किसी भी पर्यायके सूक्ष्म अंश करके समयमात्रवर्ती पर्यायको ज्ञेय करनेका ज्ञानात्मक प्रयत्न करें अनेक समयोंकी राग परम्पराके समूहरूपसे न जानें क्योंकि—एक द्रव्य, एकले प्रदेश एक स्वकाल एक अखंडभावका विचार भावना ध्यान व उपयोग हो, तदनंतर अविकारानुभूति होती है।

प्र· १७१—ज्ञानमें ज्ञानका उपयोग होनेपर ज्ञानानुभूति होती है वही अविकारानुभूति है तब द्रव्य क्षेत्र काल रूपेण उपयोगको अविकारानुभूति क्यों कहा?

उ.—एकाकी स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकालके ज्ञेय होने पर उस ज्ञानका ज्ञेय ज्ञानस्वरूप ही हो जाता है। अतः रागके

निरपेक्ष स्वकालकी परिस्थितिका अन्वेषक उपयोग रागानुभवसे पृथक् हो जाता है।

प्र. १७२—इस रागपर्यायका कर्ता क्या आत्मा है?

उ.—रागका कर्ता आत्मा नहीं है क्यों? रागसे पहिले होने वाली द्वेष पर्यायमें रागपर्याय नहीं, परन्तु आत्मा सतत है। आत्मा तो त्रैकालिक है तब त्रैकालिक-स्वभावी आत्मा का कार्य कैसे हो।

प्र. १७३—तब तो राग नैमित्तिक है यह कथन तो ठीक है?

उ.—नहीं, क्योंकि इसका सामानाधिकरण्य नहीं होता, यतः आत्माके वर्तमान पर्यायमात्र न होनेसे दोनोंका आधार आत्मा नहीं। यदि दोनोंका आधार रागको माना जाय सो भी उस नैमित्तिक भावसे अतिरिक्त कोई और राग नहीं।

प्र. १७४—तब क्या रागकी उत्पत्ति अहेतुक है?

उ.—हाँ रागकी उत्पत्ति अहेतुक है—क्योंकि जो उत्पन्न हो रहा है वह तो उत्पन्न करता नहीं यदि वह आगे की पर्याय उत्पन्न करने लगे और आगे की प्रथमक्षण में उत्पन्न करदे तब तो सब पर्यायें एक क्षणमें ही उत्पन्न हो जानेसे सब पर्यायोंका अभाव होजायगा सर्व पर्यायोंका अभाव होनेसे द्रव्यका भी अभाव होजायगा।

जो उत्पन्न हो चुका वह उत्पन्न नहीं कर सकता क्यों

कि ऐसा करनेमें उसे २ समय तो रहना ही पड़ेगा और जब २ समयमें रह गया तो और समयोंमें रहनेसे कौन रोक सकता है फिर कूटस्थ अपरिणामी हो जायगा।

पूर्वपर्यायका अभावभी उत्तरपर्यायका कारण नहीं, क्योंकि अभाव भावका कारण नहीं हो सकता।

प्र. १७५—इस रागका विनाश किस कारणसे होता?

उ.—सभी पर्यायका विनाश अहेतुक है यह राग भी अपने स्वकालके अन्तसे अन्तको प्राप्त होता क्योंकि 'रागके अभावके हेतुपर प्रश्न होता है कि वह अभाव प्रसज्यरूप (निषेधरूप) है या पर्यु दासरूप (अन्यके सत्ता बोधक) है यदि प्रसज्यरूप है तो इसका भावार्थ यह हुआ कि 'कोई रागको नहीं करता है' तब वह हेतु क्रियाके निषेधमें व्याप्त होनेसे अभावका कर्ता नहीं। यदि पर्यु दास रूप कहो तो वह पर्यु दास रूप अभाव रागसे भिन्न है या अभिन्न? यदि भिन्न कहो तो उससे रागका विनाश नहीं हो सकता, यदि अभिन्न कहो तो राग और पर्यु दास एकही वस्तु हुए तब परसे पर्यु दासकी उत्पत्तिका अर्थ रागकी उत्पत्ति ही हुई सो राग तो उत्पन्न था उत्पन्नकी उत्पत्ति क्या? इसलिये राग का नाश अहेतुक है—कहा भी है—'जातिरेव हि भावानां निरोधे हेतुरिष्यते। यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत्पश्चात्स केन वः॥ = जन्म ही भावोंके विनाशमें कारण है, क्योंकि

जो पदार्थ उत्पन्न हो और अनन्तर समयमें नष्ट न हो तो पीछे भी किससे नष्ट होगा अर्थात् किसीसे भी नहीं।

प्र. १७६—तब फिर ऐसे रागसे तो न वन्ध्यवन्धकभाव बन सकता और न बध्यघातक भावही बन सकता ?

उ.—इस सूक्ष्मदृष्टिमें न तो वन्ध्यवन्धकभाव है और न वध्यघातकभाव है क्योंकि इसका विषय एक है, इसकी दोपर दृष्टि नहीं।

प्र १७७—तब तो आत्मा और पुद्गलकर्मका भी सम्बन्ध न होगा?

उ.—हां इन दोनोंका सम्बन्ध भी नहीं आत्मा अपने स्वरूपमें है पुद्गल कर्म अपने स्वरूपमें है दोनों एक दूसरेके स्वरूपसे अत्यन्त बाहर हैं।

प्र· १७८—तो वह राग कोई ऐसा होता होगा जो वर्णन में नहीं आ सकता?

उ.—ठीक है—राग वर्णनमें नहीं आ सकता क्योंकि रागपर्यायमें और राग शब्दमें वाच्यवाचक भाव नहीं है, यतः विवक्षित सम्बद्ध राग तो शब्द प्रयोग कालमें रहता नहीं और असम्बद्धमें यदि वाच्यवाचक सम्बद्ध हो तो कोई भी किसीका वाचक बन बैठेगा। दूसरी बात यह है— कि शब्द और राग भिन्न भिन्न पदार्थ हैं।

प्र. १७९—क्या सर्वथा ऐसा ही है जो उस रागपर्यायका

व्यवहार ही नहीं हो सकता?

उ.—नहीं, राग या द्वेषके विषयमें ऋजसूत्रनय भी नाम, द्रव्य, भाव इन तीन निक्षेपोंको स्वीकार करता है।

प्र॰ १८०—ऋजुसूत्रनय स्थापनानिक्षेपको क्यों स्वीकार नहीं करता?

उ.—स्थापना सादृश्यसमान्यकी विवक्षासे होती किन्तु ऋजुसूत्रनय अनेकको विषय न करनेके कारण इस नयमें स्थापनाका न्यास नहीं है।

प्र॰ १८१—ऋजुसूत्रनय तो एक समयवर्ती पर्याय को ग्रहण करता है उसमें द्रव्य निक्षेप कैसे बनेगा?

उ.—ऋजुसूत्रनय २ प्रकारका है स्थूलऋजुसूत्र अर्थात् अशुद्धऋजुसूत्र तथा सूक्ष्मऋजुसूत्र अर्थात् शुद्धऋजुसूत्र। इनमें से अशुद्ध ऋजूसूत्रका विषय व्यञ्जनपर्याय एवं अनुभाव्य विकारी अर्थ पर्याय है सो वे अधिकस्थिति वाले होकर भी वर्तमान रूपसे ग्रहण करनेमें आनेसे अशुद्ध ऋजुसूत्रनयके विषय हैं अतः द्रव्यनिक्षेप बन जाता है किन्तु शुद्ध ऋजुसूत्रनयमें द्रव्यनिक्षेप नहीं बनता अथवा शब्दनय तो लिंग संख्या आदिके भेदसे भी भेद करता है अतः शब्द-नय आदिमें द्रव्यनिक्षेप संभव नहीं है परन्तु शब्दनयकी अपेक्षा ऋजुसूत्र महाविषयक होनेसे शुद्ध ऋजुसूत्रमें भी द्रव्यनिक्षेप संभव है।

प्र. १८२—कषायोंके विषयमें प्रसिद्ध उपाय जो "निर्देश स्वामित्वसाधनाधिकरणस्थिति विधानतः" के अनुसार हैं उन उपायोंसे वर्णन करिये जिससे फिर इनके स्वरूपज्ञान में संदेह न रहे?

उ.—पहिले निर्देशकी अपेक्षा वर्णन करते हैं—कषाय क्या है? कषायका निर्देश १२ प्रकार से है—१. नामकषाय, २. स्थापनाकषाय, ३. आगमद्रव्यकषाय, ४. ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकषाय, ५. भावीनोआगमद्रव्यकषाय, ६. तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकषाय, ७. प्रत्ययकषाय, ८. समुत्पत्तिकषाय, ९. आदेशकषाय, १०. रसकषाय, ११. आगमभावकषाय, १२. नोआगमभावकषाय। इनमें क्रोध, मान, माया, लोभ, इस प्रकार अक्षरसमूहरूप नाम नामकषाय है, यह सातों नयोंका विषयभूत है।

प्र. १८३—स्थापनाकषाय क्या है?

उ.—सद्भाव और असद्भाव में "यह कषाय है" इस प्रकार स्थापनाको स्थापनाकषाय कहते हैं। यह नैगम, संग्रह, व्यवहारनयका विषय है।

प्र. १८४—आगमद्रव्यकषाय किसे कहते हैं?

उ.—कषायप्रतिपादक शास्त्रके ज्ञाता किन्तु अनुपयुक्त पुरुष आगमद्रव्यकषाय हैं। यह नैगम, संग्रह, व्यवहारनयका विषय है।

प्र. १८५—ज्ञायक शरीरनोआगमद्रव्यकषाय क्या है?

उ.—कषायस्वरूपके जानने वाले जीवके शरीरको ज्ञायक शरीर नोआगमद्रव्यकषाय कहते हैं।

प्र. १८६—भावीनोआगमद्रव्यकषाय किसे कहते हैं?

उ.—जो जीव आगामी कालमें कषायविषयक शास्त्र को जानेगा उसे भावीनोआगमद्रव्यकषाय कहते हैं।

प्र. १८७—तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकषाय क्या है?

उ.—कषायोंका आधारभूत आकाश अथवा कषैले रस वाले बनस्पति आदि तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकषाय है यह नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्रनयका विषय है।

प्र. १८८—प्रत्ययकषाय क्या है?

उ.—उदयभूत, क्रोधकर्मप्रकृति, मानकर्मप्रकृति, माया-कर्मप्रकृति, लोभकर्मप्रकृति प्रत्ययकषाय हैं जिनके उदयसे जीव क्रोध, मान माया, लोभरूप होता है। यह नैगम संग्रह व्यवहार और ऋजुसूत्रनयका विषय है।

प्र. १८९—समुत्पत्तिकषाय क्या है?

उ.—कषाय प्रकृतियोंके उदयके नोकर्म सहकारी कारण समुत्पत्तिकषाय हैं ऐसे वाह्य कारण ८ प्रकारसे जुटते हैं जैसे—१. एक जीव, २. एक अजीव, ३. बहुत जीव, ४. बहुत अजीव, ५. एक जीव एक अजीव, ६. बहुत जीव एक अजीव, ७. एक जीव बहुत अजीव, ८. बहुत जीव

बहुत अजीव । यह नैगमनयका विषय है ।

प्र· १९०—आदेश कषाय क्या है?

उ —सद्भावस्थापनाकषायका वर्णन करना एवं यह कषाय है इस प्रकार की बुद्धि होना आदेशकषाय है इसका विषय भोंहचढ़ाने आदि रूपसे चित्रमें अंकित जीव है। यह भी नैगमनयकाही विषय है ।

प्र. १९१—रस कषाय क्या है?

उ.—अध्यात्मचर्चा होनेसे अध्यात्मरसकषाय का वर्णन करते हैं जी की बुद्धिके द्वारा विषय किया गया रसनेन्द्रिय का विषयभूत रस रसकषाय है यह ऋजुसूत्रनयका विषय है ।

प्र १९२—आगमभावकषाय क्या है?

उ.—कषायके स्वरूपको कहनेवाले शास्त्रका जानने वाला किन्तु वर्तमानकालमें उस शास्त्रमें उपयोग नहीं रखने वाला जीव आगमभावकषाय है ।

प्र १९३—नोआगमभावकषाय क्या है?

उ.—यह क्रोध मान माया लोभके भेदसे चार प्रकार का है क्रोधका वेदन करनेवाला अर्थात् क्रोधमें उपयुक्त जीव क्रोधकषाय है मानोपयुक्तमानकषाय है, मायोपयुक्त माया कषाय है, लोभोपयुक्त लोभ कषाय है । यह नोआगमभाव निक्षेपसे वर्णन है—यह स्थूलऋजुसूत्रनयका

विषय है ।

प्र· १६४—यह स्थूलऋजुसूत्रनयका ही विषय क्यों कहा सूक्ष्मऋजुसूत्रनयसे क्यों नहीं कहा?

उ.—सूक्ष्मऋजुसूत्रनयसे समयवर्ती कषायके जानने पर वह ज्ञाता कषायका वेदक नहीं होता ।

प्र· १६५—कषाय किसके होती है? किस साधनसे और किसमें होती है?

उ.—नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्रकी अपेक्षा कषाय जीवके है तथा वह कषाय औदयिकभावसे है एवं जीवमें है किन्तु शब्दनय समभिरूढ और एवंभूतनयकी अपेक्षा कषाय का कोई स्वामी नहीं तथा यह कषाय अपने अवयवसेहै एवं कषायमें कषाय है ।

प्र· १६६—यह सब कथन किस प्रयोजनके लिये किया गया?

उ.—सर्वनयोंसे आत्माका सर्व ओरसे निर्णयकर अपने ध्रुव अखंड सहज चैतन्यभावमें रुचि करना और सम्यग्दर्शन से निरंतराय अपना पोषण करना इसका प्रयोजन है ।

प्र. १६७—अनादिसे मोहबंधनसे दूषित इस जीवको पहिले पहिले सम्यग्दर्शन किन निमित्तोंके सम्पर्क में होता है?

उ.—सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया

पुरिसा। अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥
सम्यक्त्वके निमित्त जिनसूत्र और जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुष हैं और अंतरंग कारण दर्शनमोहनीयके क्षय क्षयोपशम उपशम हैं भावार्थ–जिस किसी भी भव्यजीवके जब सम्यग्दर्शनका प्रादुर्भाव होता है तब उस सम्यग्दर्शनका निमित्त जिनसूत्र और जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुष होते हैं ये वाह्य निमित्त हैं क्योंकि इनका आत्मक्षेत्रसे सम्बन्ध नहीं परन्तु क्षय क्षयोपशम उपशमरूप से क्षीणावस्थापन्न दर्शनमोहनीयकर्म अतरंग कारण है क्योंकि कर्म आत्मप्रदेशोंके साथ एक क्षेत्रावगाह बंध रूप सम्बन्धको लिये है अथवा मोहभावका विनाश या उपशम आदि अंतरंग कारण है।

प्र. १६८—जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुषसे मतलब तो सम्यग्दृष्टि से ही होगा क्योंकि ज्ञाता भी वही ठीक कहलाता है जिसने ज्ञानके अनुकूल अपने आपको भी बना लिया हो?

उ.—जो जिनसूत्रके ज्ञानी जिनसूत्रके अनुसार अपने बुद्धिगत वैराग्यभावसे उपदेश देते हैं उनका वह यथार्थ उपदेश सम्यक्त्वका निमित्त होता है चाहे वे जिनसूत्रके ज्ञाता द्रव्यलिंगी (मिथ्यादृष्टि) हों या सम्यग्दृष्टि। हां यह बात अवश्य है कि श्रोताके ज्ञानमें यह श्रद्धान हो कि ये आत्माज्ञानी हैं तो निमित्त होते हैं यदि यह विश्वास हो कि ये अज्ञानी हैं तब निमित्त नहीं हो सकते क्योंकि साक्षात

असर तो खुदके परिणामका ही हुआ करता है।

प्र. १९९—यदि सुदृष्टि आत्मज्ञानी समक्ष हो तभी तो श्रोताको यह विश्वास हो सकता है कि यह आत्मज्ञानी हैं फिर दोनों प्रकार कैसे संभव है?

उ.—प्रायः बात यह ही है कि सुदृष्टि आत्मज्ञानी के यथार्थ वचनोंके निमित्तसे यह विश्वास होता है कि यह आत्मज्ञानी हैं परन्तु क्वचित कदाचित् अबुद्धिगत मिथ्यात्व की सूक्ष्मवासनासे युक्त जिनसूत्रके ज्ञाता पुरुष अपने बुद्धिगत वैराग्यभावसे जिनसूत्र के अनुसार उपदेश देते हैं उनके उस यथार्थ निरूपणके श्रवणसे भी श्रोतावोंको उनके ज्ञानित्वका विश्वास हो जाता है।

प्र. २००—जब क्षायिक सम्यग्दर्शनको केवली श्रुत केवली निमित्त होते हैं तब उपशम सम्यक्त्वको सामान्य सम्यग्दृष्टि तो होना ही चाहिये?

उ.—बात यह है कि उपशम सम्यक्त्व होनेके लिये भावसम्यग्दृष्टि होना ही चाहिये, अर्थात् उपशम सम्यग्दर्शन होनेके लिये यह श्रद्धान होना आवश्यक है कि ये यथार्थ द्रष्टा हैं जैसे—क्षायिकसम्यग्दर्शन जैसे निर्मलपरिणाम होने के लिये उस भव्यके उपयोगमें यह श्रद्धान होना आवश्यक है कि ये केवली भगवान् हैं। परन्तु महान् श्रुतके धारी यदि द्रव्यलिंगी भी हों तो भी उनके यथार्थ वचनके श्रवण

और मंदकषाय मूर्तिके दर्शनसे श्रोता यह उपयोग कर सकता है कि ये यथार्थदृष्टि हैं।

प्र. २०१—श्रोताको उपदेष्टाके प्रति ज्ञानीका विश्वास होना चाहिये यह भी ठीक है परन्तु साथमें सामने सम्यग्दृष्टिभी चाहिये।

उ.—धवलामें जहाँ यह बताया गया कि "दर्शन मोह की क्षपणा अढ़ाई द्वीप समुद्रोंमें स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोंमें जब केवली तीर्थंकर होते हैं तब दर्शनमोहक्षपणाका प्रारंभ करता है" इससे पूर्व अनंतर-वर्ती सूत्रमें लिखा है किसके पासमें दर्शनमोहक उपशामना होती है ऐसा कहने पर इस विषयमें भी कोई नियम नहीं है क्योंकि सर्वत्र सम्यक्त्वका ग्रहण संभव है।

प्र. २०२—इस तरह तो क्षायिक सम्यग्दर्शन होनेके लिये भी किसी भी पुरुषमें यह केवली हैं ऐसा श्रद्धान किया जासकता है?

उ.—नहीं। क्योंकि क्षायिकसम्यग्दर्शनका आविर्भावक पुरुष क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि ही होता है और केवली अकेवलीकी पहिचान सम्यग्दृष्टिकेलिये बहुत ही आसान है उसमें संशयको भी स्थान नहीं इसीलिये केवलीके ही निकट में क्षायिक सम्यग्दर्शनके आविर्भावक क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के यह केवली हैं ऐसा श्रद्धान होता है और क्षायिक सम्यग्-

दर्शन होता है। तथा यह नियम भी सर्वथा नहीं है क्योंकि चरमशरीरी विशिष्ट आत्माओंके केवलीके अभावमें भी क्षायिक सम्यग्दर्शन हो जाता है।

प्र. २०३—यदि जिनसूत्रके ज्ञाताका अर्थ निर्विकल्पानुभवी ही अर्थ करें तो उसमें क्या बाधा आती हैं?

उ.—यहां बाधासे मतलब नहीं है यथार्थ अर्थसे मतलब है इसी कारणसे जहाँ शास्त्रोंमें यह वर्णन आया है कि द्रव्यलिंगी साधुवोंके उपदेशके निमित्तसे अनेक भव्य कल्याण कर जाते हैं परन्तु द्रव्यलिंगी अपनी ग्रन्थि नहीं तोड़ पाता यह कथन निर्विरोध हो जाता है।

प्र. २०४—यदि हम इस गाथामें आये हुए अंतरहेउको पहली पंक्तिके साथ लगादें और जिनसूत्रका ज्ञाता वही है जिसने ज्ञानका फल सम्यग्दर्शन पाया अन्यथा जानना व्यर्थ है ऐसा अर्थ करदें तबतो मामला साफ हो जाता है।

उ—.भाई! इस प्रकार सीधे स्पष्ट अर्थको छोड़कर शब्दोंका परिवर्तन और अन्य युक्तियोंका संचालन "मैं ही ज्ञानी हूँ लोग मेरे ही पास आवें" ऐसे अध्यवसान विना होना कठिन है। अथवा जिणसु सुत्तस्स जाणया पुरिसा के साथ अन्तरहेऊ शब्द लगानेपर यह अर्थ होता है कि सम्यक्त्वका वाह्य निमित्त जिनसूत्र है और अन्तरंग कारण अर्थात् उपादान कारण जिनसूत्रको जानने वाले मुमुक्षु

जिन्हें सम्यग्दर्शनकी लब्धि हो रही है) जीव हैं क्योंकि उन्हीं जीवोंके दर्शनमोहका क्षय क्षयोपशम आदि हो रहा है।

प्र. २०५—धवल टीकामें भी तो लिखा है कि—छद्दव्वणवपदत्थोवदेसो देसणाणाम। तीए देसणाए परिणदआइरियादीणमुवलंभो, देसिदत्थस्स गहण धारणविचारण सत्तीए समागमो अ देसणलद्धी णाम। तथा लब्धिसारमें लिखा है "छद्दव्वणवपयत्थोवदेसयरसूरि पहुदिलाहो जो। देसिद पदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धोदु। इससे भी सम्यग्ज्ञानी ही निमित्त है यह सिद्ध होता है?

उ.—पहिले इनका शब्दार्थ देखिये "छहों द्रव्य और नव पदार्थोंके उपदेशका नाम देशना है उस देशना से परिणत (उस उपदेशके देने वाले) आचार्य आदिकी उपलब्धिको और उपदिष्ट अर्थके ग्रहण धारण तथा विचारणकी शक्तिके समागमको देशनालब्धि कहते हैं" तथा गाथाका अर्थ है कि 'छह द्रव्य नव पदार्थोंके उपदेशको करने वाले आचार्य आदि का लाभ होना व उपदिष्ट पदार्थके धारणका लाभ होना देशनालब्धि है। यहां आचार्य आदिके द्रव्य पदार्थोंके उपदेशको देशनालब्धि कही है प्रायः सभी आचार्य सम्यग्दृष्टि होते हैं किन्तु अपवादस्वरूप ११ अंग नौ पूर्व तकके ज्ञाता (जिसमें आत्मप्रवाद ज्ञानप्रवाद पूर्व भी है) सूक्ष्म

मिथ्यात्व अंश वाले हो सकते हैं वे भी आचार्य होते हैं इन्हें भी जिन सूत्रके ज्ञायक पुरुष सिद्धांतमें कहा है एक भी अंग के ज्ञाता व परम्परा व यथार्थ द्रव्यस्वरूपके ज्ञाता भी जिनसूत्रके ज्ञायक पुरुष हैं। वे निष्कपट भावसे आचरण करते हैं यथार्थ उपदेश देते हैं उनकी देशनाकी प्राप्ति भी देशना लब्धि है। तथा प्रभृति शब्दसे अन्य भी जिनसूत्रके ज्ञाता उपदेष्टा ग्रहण करना चाहिये।

प्र. २०६—इस तरहके वर्णनमें तो श्रोताओंके हृदय अस्थिर हो जावेंगे?

उ.—इस दृष्टिसे तो इसके वर्णन करनेमें हमें भी विषाद है परन्तु आपकी ताना तानीमें अपवाद स्वरूप जो यथार्थ बातका अपलाप होता था उसको बतानेके लिये यह वर्णन किया है।

प्र· २०७—आपने तो देशनालब्धिका महत्त्वही कम कर दिया?

उ.—यथार्थ उपदेशका जो महत्त्व है वह तो वही है तथा देशनालब्धि ही क्या प्रायोग्यलब्धि तक चारों लब्धियाँ भव्य अभव्य दोनोंके होती हैं, जो चीज भव्य अभव्य दोनों के होती हैं उसमें निमित्तके निमित्त की इतनी तानातानीका श्रम ठीक नहीं। और लिखने के लिये तो सम्यग्ज्ञानी शब्दभी लिखा जावे तो भी उसका अर्थ यहाँ

"जैसा स्वरूप है तैसा जानने वाला" यह अर्थ है उसका नियम सम्यग्दृष्टि शब्द व एव देकर या प्रतिपक्षका निषेध करते हुये वर्णन होता क्योंकि सम्यग्ज्ञानी शब्द व्यापक शब्द है।

प्र. २०८—यथार्थ देशनाका ही महत्त्व है तब आचार्य आदिकी देशना ऐसा कहकर आचार्य शब्दकी मुख्यता क्यों दी?

उ.—वर्णन संभवरूप उत्कृष्टसे ही प्रारंभ किया। क्योंकि "मिथ्यात्वके सूक्ष्म अंश हो तो तब भी यथार्थ ज्ञाता का उपदेश निमित्त हो जाता है" ऐसा कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है।

प्र. २०९—अस्तु! यथार्थ निरूपणके निमित्तसे देशना लब्धि होती है यह भी ठीक है, परन्तु जब जो होना है तब ही तो होगा, और होगा नियमसे क्योंकि प्रत्येक कारण नियत ही है फिर निमित्तोंके विषयमें तानातानी से लाभ क्या?

उ.—निमित्तोंकी तानातानी तो नहीं की प्रत्युत गाथा के सीधे अर्थको छोड़कर अन्य अर्थकी कल्पना तानातानी है और नियतकी बात कहो सो सम्यक्नियतिवाद और मिथ्या-नियतिवादमें अन्तर है।

प्र. २१०—सम्यक्नियतिवाद और मिथ्यानियतिवाद

के लक्षण व अन्तर क्या हैं?

उ.—अनुकूल कारणपूर्वक उपादानमें पर्यायका उत्पाद नियत होना मानना सम्यक्नियतिवाद है। तथा अकारण, द्रव्यमें नियत पर्यायोंकी अभिव्यक्ति मानना मिथ्यानियतिवाद है। अथवा निमित्तका विरोध करके नियत मानना सम्यक् है, और निमित्तोंका सम्पर्क व उपादानमें कार्य दोनोंको नियत मानना सम्यक् है। क्योंकि इसमें कार्य कारण भावकी अपेक्षा नष्ट नहीं की, फिर भी यदि यह बुद्धि आ जाय कि निमित्त अपना द्रव्य क्षेत्र काल, भाव का कुछ भी अंश उपादानको प्रदान करता है या उसके द्वारा सहायता करता है या इसका असर डालता है तो वह मिथ्यात्व है, क्योंकि यह मान्यता वस्तुका वस्तुत्व मिटा देती है।

प्र. २११—सम्यक्नियतिवाद तो वह होना चाहिये जिसमें अनेकान्तपना घटित हो अर्थात् द्रव्यमें पर्यायें कथंचित् अनियत हों व कथंचित् नियत हों ऐसा हो।

उ.—यह भी अनेकान्त यहाँ घटित होता है कि द्रव्य में पर्यायें कथंचित् अनियत व नियत हैं।

प्र. २१२—द्रव्यमें पर्यायें अनियत किस प्रकार हैं?

उ.—उपादान भूत वस्तुमें ऐसा कोई गुण नहीं जो इस बातका नियामक हो कि अमुक अशुद्ध पर्यायके बाद अमुक

अशुद्ध पर्याय हो या अमुक उपाधिके बाद अमुक उपाधि की सन्निधि करे। द्रव्यत्व गुण परिणमन मात्रका नियामक है। क्रमभाविता 'पर्यायें गुणोंकी तरह युगपत् नहीं है, क्रम से होती हैं' एतन्मात्रकी द्योतिका है। इसलिये द्रव्यमें पर्यायें द्रव्यत्व गुणके हेतु ही सामान्य (अनैमित्तिक) परिणमन होनेसे नियत हैं।

प्र· २१३—द्रव्यमें पर्यायें अनियत माननेपर यह कथन विरुद्ध हो जायगा कि त्रिकालकी पर्यायोंका समूह द्रव्य है?

उ.—द्रव्ये त्रिकाल रहता है क्योंकि सत्का नाश नहीं होता और जब रहता है तब परिणमनशीलताके कारण पर्यायें होती ही रहती हैं, वे पर्यायें अपने समयमें वाह्ये-तरोपाधिके अनुरूप विशेष स्वरूप रखती हैं। उन सब पर्यायोंमें वह द्रव्ये व्यापक है। अतः 'त्रिकालकी पर्यायोंका समूह द्रव्य है' इस कथनमें विरोध नहीं आता।

प्र· २१४—द्रव्यमें पर्यायें नियत किस प्रकार हैं?

उ—जब जो होना है वह होता ही है और वह द्रव्य के सामान्य तत्त्वके ही व्यक्त भाव हैं, जिसे विशिष्ट ज्ञानी पहिलेसे जान भी जाते हैं। इसलिये द्रव्यमें पर्यायें नियत हैं।

प्र. २१५—उक्त दोनों प्रकारके कथन विरोधको प्राप्त क्यों नहीं होते हैं?

उ.—विविध या विरुद्ध कथनोंमें दृष्टि अनेक होनेपर विरोध नहीं रहता।

प्र. २१६—जब पर्यायें सुनिश्चित हैं तब तो निमित्तकी आवश्यकता ही नहीं विना निमित्तके होना चाहिये ?

उ.—जहां पर्यायें सुनिश्चित हैं वहां यह निमित्त कलापकी उपस्थिति भी सुनिश्चित है।

प्र. २१७—जब निमित्त कलापकी स्थिति सुनिश्चित है तब धर्मके निमित्त मिलानेका परिश्रम व्यर्थ है?

उ.—धर्म अनैमित्तिक परिणति है किसी निमित्त पर दृष्टि रहनेपर वीतरागपरिणति रूप धर्म नहीं होता, पुण्य पापके भावका आश्रय निमित्त हैं अत: किसी भी निमित्त पर दृष्टि न रहे स्वावलम्बो उपयोग बना रहे तो वह महा-पुरुषार्थ है। निमित्तका अलक्ष्य तो भला ही है, किन्तु मोही जीव इसका प्रयोग शुभभावों पर तो करता है अशुभ-भावों पर नहीं करता।

प्र. २१८—तब जो यह कहा गया कि वज्रवृषभनाराच-संहननसे ही मोक्ष होता मनुष्यभवसे ही मोक्ष होता क्या यह असत्य है?

उ.—असत्य नहीं है किन्तु इन कथनोंमें यह बताया गया है कि जो जीव निज चैतन्य स्वभावका लक्ष्य कर निमित्तपर दृष्टि न रखकर केवलोपयोगी रहता है उसके

कर्मनिर्जरायें होती हैं उन कालों में ऐसे ही निमित्त होते हैं। यदि कोई जीव वज्रवृषभनाराचसंहनन या मनुष्यभव या मोक्षमार्गके साधनभूत किन्हीं वाह्य पदार्थोंकी माला ही जपता रहे तो उन्हें ऐसे निमित्त मिलना निश्चित नहीं, किन्तु स्वोपयुक्त आत्माको निवृत्तिके योग्य वाह्य साधनों का समागम स्वयं सुनिश्चित है।

प्र. २१९—यह भी ठीक परन्तु जब जो परिणति होनी हो वह तबही होती है तब चिन्ताही क्या करना समय आवेगा तब कल्याण हो जावेगा ?

उ.—इस विचार वालेकी परिणति तो स्पष्ट सी ही है। धर्मके लिये तो होनीको देखे और विषये साधनोंके लिये चिन्ताओंका घर रहे यह तो श्रद्धा से भी दूर है। भाई! परिणति होनी है—वह किसमें होनी है उसका यथार्थ बोध होतेही विकल्पोंसे दूर रहनेकी वृत्ति हो जावेगी वह ही तो कल्याणका मार्ग है।

प्र. २२०—यदि ऐसा ही मान लिया जावे कि जैसा निमित्त मिलेगा वैसा कार्य हो जावेगा निश्चित कुछ भी नहीं तो क्या हानि है ?

उ.—भाई! जब जैसा निमित्त मिलेगा वैसा कार्य होगा इसमें कोई विरोध नहीं और वही सर्वज्ञ या अवधि-ज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी जान जाते हैं तब तो निश्चित ही हो

गया अन्यथा अवधिज्ञान, निमित्तज्ञान, ज्योतिष आदि ये सब मिथ्या हो जावेंगे।

प्र. २२१—जंजस्स जह्मि देसे जेणविहाणेण जह्मि कालम्हि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा।१।
तं तस्स तम्हि देसे तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि।
को सक्को चालेदुं इंदो वा अह जिणिदो वा।२।

इन गाथाओंका क्या अर्थ है?

उ.—जन्म वा मरण व अन्य जो कार्य जिस जीव के जिस देशमें जिस कालमें जिस प्रकारसे अर्थात् जिन निमित्तोंके सम्पर्क आदिसे होना जिनेन्द्रदेवने जाना वह उसके उस देशमें उस कालमें उस प्रकारसे होता ही है उसे इन्द्र अथवा जिनेन्द्र आदि कोई भी परिवर्तित करनेके लिये समर्थ नहीं है।

प्र. २२२—इससे स्पष्ट तत्त्व क्या निकला?

उ.—जो बात जिन निमित्तोंके सम्पर्कमें अपने उपादान परिणतिसे होना है वह उस तरहसे होती ही है। यहाँ द्रव्य क्षेत्र काल भाव और निमित्त इन पांचका वर्णन आया है जिससे यह सिद्ध है कि यहाँ न तो कार्यकारण का निषेध है और न द्रव्य द्रव्यांतरके संक्रमणका व न कर्ताकर्मका विधान है। यह भाव स्पष्ट हुआ।

प्र. २२३—यहाँ यह बात क्या सिद्ध नहीं होती है कि यदि निमित्त मिले तब ही काम हो या जब कार्य हो तब निमित्त जुटेंगे ही?

उ.—अनेक निमित्तोंके सम्पर्क होनेपर भी जितने द्रव्य हैं उनके उतनेही स्वयंके परिणमन हैं किसीके परिणमनके लिये किसीकी आधीनता नहीं कि कोई अपना द्रव्य क्षेत्र काल भाव प्रदान करे तब कार्य हो इसलिये उस परिणति वर्गमें उपादान या निमित्त किसीको भी ऐसा कहना कि "जब यहाँ ऐसा हो तब वहाँ ऐसा होता है" वस्तुको परतन्त्र बनाना है।

प्र. २२४—इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

उ.—जैसे यह कहना कि "जब उपादानमें यह परिणति हो तब निमित्त जुटते ही हैं इसमें निमित्तोंको पराधीन बनाया। अथवा ऐसा कहना कि जब इनके निमित्त जुटे तब उपादानमें परिणमन होताही है, यहां उपादानको पराधीन बनाया।

प्र. २२५—तब ठीक बात क्या है?

उ.—बात यह है—सर्वकार्य, निमित्त संपर्क आ हो रहें हैं, वे सब एक साथ हैं। निमित्त बिना यह कुछ होता नहीं—निमित्त कुछ करता नहीं दोनों ही बातें जैन-सिद्धान्तके प्राण हैं।

प्र. २२६—जब कोई द्रव्य है और परिणमन होता है और अपनी ही परिणतिसे होता है तब "निमित्त बिना होता है" यह मान लेनेमें क्या दोष है ?

उ.—'निमित्त बिना होता है' यह मान लेनेपर रागादि भाव अनैमित्तिक होजानेके प्रसंगसे स्वभाव ठहर जायेंगे, और स्वभावका नाश नहीं होता अतः मोक्ष परिणतिका अभाव हो जायगा ।

प्र. २२७—'तब निमित्त कुछ करता है' यह ही भाव लेना चाहिए ?

उ.—"निमित्त कुछ करता है" माननेपर निमित्तकी दो क्रियायें हो गईं, तब दूसरे पदार्थका ही अभाव हो जायगा, फलतः सभीका अभाव हो जायगा और द्रव्य-व्यवस्था नष्ट हो जायगी, सो है नहीं ।

प्र. २२८—तब फिर क्या मार्ग है ?

उ.—जैसे उपादानोंमें कार्य निश्चित है उसी तरह उस कार्यके जो निमित्त मिले, मिलते हैं, मिलेंगे उनका सम्पर्क निश्चित है । ज्ञानी तो उपेक्षाभावसे रहते हुए उन संपर्कों को पाता है अज्ञानी नाना विकल्पोंसे क्षुब्ध होता हुआ निमित्तोंके जुटानेको व्यग्र रहता है ।

प्र. २२९—इस अध्यात्मरूपणामें संक्षेप रूपसे कितनी दृष्टि जानने योग्य हैं ।

उ.—पाँच प्रकारकी दृष्टि जिन्हें नये कहते हैं जानने योग्य हैं— १ परमशुद्ध निश्चयनय, २ शुद्धनिश्चयनये, ३ अशुद्ध निश्चयनय, ४ व्यवहारनय, ५ उपचारनय । इनमें से उपचारनय तो मिथ्याही है शेष पूर्वके ४ नय सुनय हैं इन नयोंके विषय क्रमशः निम्न प्रकार हैं— १-वस्तुका सहज स्वरूप अखण्ड ऐकाकार है । २-वस्तु अपने स्वभाव भावका कर्ता है । ३-वस्तुकी विभाव परिणति वस्तुके अशुद्ध उपादनसे होती है उसमें निमित्त कुछ नहीं करता अर्थात् निमित्त अपना द्रव्य क्षेत्र काल भाव गुण क्रिया आदि कुछ भी नहीं अर्पित=स्थापित करता । ४-वस्तुमें विभाव परिणति निमित्त बिना नहीं होती । ५-मेरे मकान आदि हैं व अमुकके अमुक पदार्थ हैं आदि । इनमेंसे पांचवीं बात तो सुननेके भी काबिल नहीं है । शेष सुनयोंसे यह निष्कर्ष निकला कि हमारी यह विभावदशा निमित्त बिना होती नहीं फिरभी इसमें निमित्त कुछ करता नहीं पुनरपि मेरा सहज स्वरूप अखण्ड एकाकार है जिसकी पहिचान सम्यग्-दर्शन है जिसके लक्ष्यबलसे ऐसा विशेष भाव होता है जो सामान्य सहजभावके अनुरूप विकास पाता है।

प्र. २३०—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होनेके बादभी तो कुछ करनेके लिए रहता होगा ?

उ.—आविर्भूत वह सम्यग्ज्ञान शुद्धमात्रामें स्थिर रहे

यह ही एक कार्य रह जाता है।

प्र. २३१—महाव्रत धारण करना तपस्या करना आदि कार्य तो करना ही होता है?

उ.—सम्यग्ज्ञानको एकाकार स्थिर रखने रूप कार्यके प्रयत्नशील पवित्रात्माकी वाह्य प्रवृत्ति महाव्रतरूप होती ही है और तदान्तर सर्वविकल्परहित परिणति हो जाती है।

प्र. २३२—तपस्या बिना तो कर्मनिर्जरा होती ही नहीं, वह तो करना ही होगा?

उ.—तप इच्छानिरोधको कहते हैं, इच्छाके अभाव हुए बिना कर्मोंकी अविपाक निर्जरा नहीं होती और इच्छाके अभावमें ही ज्ञानपरिणति स्थिर होती है ज्ञानीजीव इस विचारसे कि कभी किसी उपसर्गके आनेपर स्वभावसे च्युत नहीं हो सकूं इस दृढ़ताके अर्थ वर्षा शीत ग्रीष्मका सहन और अनशन आदि विविध तपस्यायें करता है व शरीरके सुखियापन जैसी प्रवृत्ति नहीं रखता अध्यात्मयोगियोंका लक्ष्य शुभयोगमें भी अपने अनादि अनन्त अखण्ड एक स्वरूप चैतन्यभावपर रहता है। सर्वनयोंसे वस्तु निर्णय करनेका प्रयोजन भी यही है।

प्र. २३३—इन उक्त तथा संबंधित अध्यात्मक कथनोंका संक्षेपमें पुनः स्पष्टीकरण करिये।

उ.—आत्मा उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक स्वतः परिणमन शील है ।

प्र· २३४---वस्तु परिणमनशील तो है परन्तु निमित्तकी अपेक्षा करकेही तो परिणमती है।

उ.—कोईभी वस्तु अपने परिणमनके लिये किसी की प्रतीक्षा नहीं करता अर्थात् ऐसा नहीं होता कि यदि पर-वस्तु उपाधिभूत न मिले तो वस्तुका परिणमन रुक जाय।

प्र. २३५---तब फिर औपाधिक नामक विशेष भाव कैसे होता है?

उ.—वस्तु तो अपने परिणमन स्वभावके एक व्रत से परिणमता ही जाता है, यदि उपाधि सन्निधिमें हो और प्रकृत वस्तुमें वैसे परिणमनकी योग्यता हो तब औपाधिक भाव रूपसे परिणम लेता है। यदि औपाधिकभावकी योग्यता नहीं तो स्वाभाविकभावरूप परिणम लेता है।

प्र· २३६—जब आत्मामें औपाधिकभावकी योग्यता नहीं रहती तब भी क्या उपाधि (कर्म) सन्निधिमें रहती है?

उ.—जहां औपाधिकभावकी योग्यता नहीं रहती वहां उपाधि सन्निधिमें भी नहीं होती, तथा कदाचित् (क्षीणावसरमें) उपाधि सन्निधिमें हो भी तब वह जघन्य अविभागप्रतिच्छेदों सहित होती है।

प्र॰ २३७—यदि ऐसा हो कि औपाधिकभावरूप परिणमनेकी योग्यता हो और उपाधिकी सन्निधि न हो तबतो वह विशेष परिणमन रुक जायगा।

उ.—जीवके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं है अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता कि जीवमें औपाधिकभावरूप पर्याय योग्यता हो और उपाधिकी सन्निधि न हो। क्योंकि जीव पर्यायमें औपाधिकभावरूप परिणमनकेलिये उपाधि कर्म होता है सो वर्तमानविकारको योग्यतावाला जीव जब योग्य अविभागप्रतिच्छेदसहित पूर्व विकारमें था वहाँभी कर्म प्रचुरस्थितिबंध सहित था जिसमें कि प्रतिक्षण नवीन नवीन अनंत कर्मवर्गणायें उदय उदीरणा रूप होती रहती हैं।

प्र. २३८—औपाधिक भावरूप परिणमनकी पर्याय योग्यता क्या निमित्तसे होती है ?

उ.—पर निमित्त उपादानकी योग्यताका कारण नहीं। उत्तर परिणामकी योग्यताका कारण पूर्व परिणाम से परिणत हो चुका द्रव्य है अर्थात् औपाधिक भावरूप परिणमनकी पर्याययोग्यता योग्य अविभागप्रतिच्छेद सहित पूर्व विकारके कारण उत्तर परिणमन वाले द्रव्यमें होती है।

प्र. २३९—पूर्वविकार जो नष्ट हो चुका वह उत्तर-पर्याययोग्यता कारण कैसे हैं ?

उ.—यह आपका प्रश्न गलत है क्योंकि आप सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टि रखकर प्रश्न कर रहे हैं और कारण-कार्यकी चर्चा करते हैं। इस नयकी दृष्टिमें एक पर्याय ही विषय है। विशेषणविशेष्य कार्यकारण उपादान निमित्त आदि किन्हीं २ तत्त्वोंका प्रतिपादन यह नय नहीं करता। इसलिये उपादानकारण समझना है तो इस गाथासे समझ लेवें "पुव्वपरिणाम जुत्तं"।

प्र. २४०—जीवमें औपाधिक योग्यता न हो और उपाधि (कर्म) रहे तब या उपाधि (कर्म) न हो औपाधिक योग्यता रहे तब निमित्त नैमित्तिकता भंग हो जावेगी ?

उ.—इसका उत्तर अभी इस ही प्रकरणमें दे चुके हैं तथा उसमें संबंधित बात यह है कि जीवमें औपाधिक योग्यता और उपाधि इनका ऐसा संयोग संबन्ध है कि जब तक जीवमें औपाधिकपर्याययोग्यतायें रहती हैं तब तक उपाधि रहती है और वह योग्य अविभागप्रतिच्छेद सहित उपाधि औपाधिक योग्यताकी द्योतिका है।

प्र. २४१—औपाधिक भाव तो प्रति क्षणका पृथक पृथक होगा?

उ.—इसका उत्तर इसही ग्रन्थमें बहुत पहिले विस्तार [से] कह चुके हैं फिर भी संक्षेपमें बात यह है कि औपाधिक भाव संस्कृतिकी अपेक्षा न तो क्षणिक है और न नित्य है किन्तु अनित्य है इसका कारण नैमित्तिकता है यह अनुभाव्य विभावकी बात है उसकी निमित्त संतति भी एक उदयावलि तक रहती है। वर्तनाकी अपेक्षा गुणपर्याय क्षण क्षणमें परिणमन करता ही है।

प्र. २४२—उक्त कथनसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि जीवका परिणमन जीवमें होता है तो भी कर्मनिमित्त के अधिकारकी बात है वह जैसा हो तैसा जीवको परिणमना होता है।

उ.—एक ओरसे इस बातको नहीं लगाना चाहिये क्योंकि जीवपरिणाम और कर्मपरिणामका परस्पर निमित्त नैमित्तिक संबंध है एक ओरसे नहीं। जब जीव परिणाममें शिथिलता होती है तब कर्मपरिणामकी प्रबलता होती है उस समय जीव विषयकसायकी ओर अधिक झुक जाता है। तथा जब जीव परिणाम अखण्ड स्वभावके लक्ष्य में होता है तब कर्म परिणाम अपने विपाकमें शिथिल हो जाते हैं। साहित्यिक ढंगसे कहो तो यह तो दोनोंका परस्पर का युद्ध है।

प्र. २४३—दोनों ओरका निमित्त नैमित्तिक संबन्ध सही परन्तु कर्म जितना अवसर देगा उतना ही तो जीव-परिणाम निर्मल होगा तब जितना कर्मविपाक है उतना विभाव होगा ही और उस विभावके निमित्त से वैसा कर्म-बंध होगा फिर उससे विभाव होगा इस प्रवाहमें छुटकारा का मौका कैसे मिलेगा?

उ.—जीव ब्रह्म है, ब्रह्म उसे कहते हैं जो बढ़नेका उत्कर्षका स्वभाव रखता हो। तथा कर्मपरिणाम कभी स्वयं कुछ शिथिल होते हैं जिसे क्षयोपशमलब्धि आदि कहते हैं। इसलिये जब जीव कर्मविपाककी थोड़ी सी भी शिथिलता-वश थोड़ा भी अवसर पाता है तब अवसरसे कुछ अधिक भी प्रकाश पा सकता है जिस सामर्थ्यसे कर्मविक्रम परास्त होने लगता है जिससे अन्तमें छुटकारा मिल ही जाता है।

प्र. २४४—जैसे जीवके रागादि भावमें कर्मविपाक निमित्त है इसी प्रकार वैभव बन्धु मित्र आदि भी तो निमित्त हैं फिर निमित्त नैमित्तिक भावकी चर्चामें उनका कुछ भी वर्णन क्यों नहीं किया?

उ.—जीव विभावका निमित्त तो कर्मविपाक है, अन्य वाह्य वस्तु तो आश्रय-विषयमात्र है अर्थात् जब रागादि-परिणाम होता है तब जो ज्ञानमें आता है वह रागादि

परिणामका विषयभूत हो जाता है और आसक्ति के समय जीव उस विषयभूत परद्रव्यके लक्ष्यमें झुक जाता है। क्योंकि इन वाह्य पदार्थोंके साथ जीवपरिणामके नियमोंका मेल नहीं बैठता परन्तु कर्मपरिणाम जीवपरिणाममें निमित्त नैमित्तिक भावोंका मेल बैठता है जैसे अभी कोई कर्मबंध करे तो हजारों सागरोंकी स्थिति, अमुक शक्तियोंका अनुभाग, अमुक अमुक प्रकृति-स्वभाव आदि बंध उसी समय स्वयं निर्णीतहो जाता है इसी तरह कर्मोदयमें भी उस ही प्रकृति, शक्ति वाले विभाव होनेका मेल रहता है। कभी बद्धकर्मकी निर्जरा संक्रमण आदि होते हैं वहाँ भी जीवके विशुद्ध परिणामोंके साथ निमित्तपने का मेल है। इस तरहके निर्णीत नियम आश्रयभूत वाह्य द्रव्योंके साथ नहीं अतः धन स्त्री मकान आदि रागादिके निमित्त नहीं है, आश्रयमात्र-रागव्यञ्जनाके बहाने हैं।

प्र. २४५—जिसमें ये सोपाधि व निरूपाधि पर्यायें होती हैं ऐसे इस आत्माका स्वरूप क्या है ?

उ.—आत्मा = उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त स्वतःसिद्ध अनादि अनंत अखंड एक चेतन पदार्थ है।

प्र. २४६—आत्मा अखंड है अर्थात् इसका खंड नहीं हो सकता तब तो यह परमाणु की तरह एक प्रदेशी ही होगा।

उ.—आत्मा असंख्यात प्रदेशी है फिर भी अखंड है इसका यह कारण है कि जो एक प्रदेशमें आत्मा है, वही उतना ही दूसरे प्रदेशमें है वही उतना तृतीय आदि सब प्रदेशों में है।

प्र· २४७—आत्मा असंख्यात प्रदेशी है ऐसा कहनेमें तो आपके इस कथनका विरोध आता है कि अनंत गुणोंका पिण्ड है सो ही आत्मा है ?

उ.—आत्मीय अनंत गुणोंके द्वारा ही या उनका आत्मा ही वह सब प्रदेश हैं आत्मगुणोंसे भिन्न प्रदेश और कोई चीज नहीं है। इसी कारण जो गुण एक प्रदेश में है वही उतना गुण द्वितीय प्रदेशमें है वही उतना तृतीय आदि सब प्रदेशोंमें है। इसी तरह सब गुण हैं। अर्थात् सर्वगुणोंका विकासभूत गुणमय स्वक्षेत्र आत्मप्रदेश हैं।

प्र· २४८—वे समस्त गुण भिन्न भिन्न होकर रहते हैं या एकमेक होकर ?

उ.—वे सभी गुण अपने अपने पृथक् सत्ताको लिये हुए हैं, फिर भी प्रत्येक गुण प्रत्येक गुणोंमें व्यापता है इस विशेषताको विभुत्व गुण करते हैं। जैसे सूक्ष्म गुण है तो सब गुण सूक्ष्म हैं, अगुरूलघुगुण है तो सब गुण अगुरूलघु-रूप हैं, अस्तित्वगुण है तो सब गुण अस्तिरूप हैं, चैतन्य गुण है तो सब गुण चेतन हैं आदि।

प्र. २४९—जब गुणोंसे अभिन्न ही प्रदेश हुए तब प्रदेश गुणोंमें अन्तर क्या हुआ?

उ.—प्रदेश तो तिर्यक-विस्तार-विष्कम्भरूप से हैं अर्थात् क्षेत्रमें क्रमसे उनकी गणना है, और गुण प्रवाह रूप से अपने अंशोंकर सहित है।

प्र. २५०—क्या गुणोंमें अंश हैं?

उ.—प्रत्येक गुणमें अनंत अंश हैं, वे अंश पृथक पृथक नहीं हैं किन्तु उन सब अंशोंका समूह-स्वरूप-आत्मा गुण है। जैसे गाय भैंसके दूधमें चिकनाई है और उसमें अंश भी सिद्ध होते हैं अन्यथा गायके दूधसे भैंसका दूध अधिक चिकना है यह प्रतीति नहीं हो सकती। फिर भी जो चिकनाईके अंश हैं वे पृथक् नहीं हैं उनका समूह ही चिकनाई है। उसी तरह आत्मामें जैसे हजार अविभाग प्रतिच्छेद वाला किसी छद्मस्थका ज्ञान है वह सब एक ज्ञान है वह ज्ञान जैसे एक प्रदेशमें पाया जाता वही उतना सब प्रदेशोंमें है।

प्र. २५१—इस विषयको स्थूल दृष्टान्तसे समझाइये?

उ.—जैसे किसीको १०० डिगरीका बुखार है तब १०० डिगरीका बुखार शरीरके सब अंशोंमें है उसकी गिनती शरीरके हिस्सोंकी भाँति नहीं हो सकती जैसे शरीर (यह एक इंच यह दूसरा इंच)। किन्तु बुखारकी गिनती प्रवाहसे है। यहां बुखारको गुणका दृष्टान्त व शरीरावयवों

को प्रदेशका दृष्टान्त मोटे रूपसे दिया गया है।

प्र. २५२—यह तो आत्मद्रव्य और आत्मगुणोंके विषय में वर्णन हुआ, उनकी पर्यायें क्यों और कैसे होती हैं?

उ.—वस्तु परिणमनशील होती है तब आत्मा भी वस्तु है—परिणमनशील है सो गुणोंके अविभागप्रतिच्छेद यद्यपि अनंत है तब भी परिणमनशील होनेसे तरतमरूप हानि वृद्धि होती रहती है यही परिणमनका मूल कारणहै यह परिणमन प्रति समय होता रहता है इसे गुण पर्याय या अर्थपर्याय कहते हैं।

प्र. २५३—यह तो गुणपर्याय हुआ किन्तु यह परिणमन देखते हैं कि कोई आत्मा चिउंटीके शरीर है वह उतने छोटे क्षेत्रमें है कोई हाथीके शरीरमें है वह उतने बड़े क्षेत्र में यह भी पर्याय-परिणमन है यह कैसे होता?

उ.—निमित्तको पाकर आत्मप्रदेशोंमें संकोच विस्तार होनेसे यह प्रदेशोंकी पर्याय होती है इसे व्यज्जन-पर्याय-द्रव्य पर्याय कहते हैं।

प्र. २५४—आत्मामें तो असंख्यात प्रदेश अनंत गुणांश उनके पर्याय ये अनेक तत्त्व पृथक पृथक स्वरूपको लिये हैं फिर अखण्ड तत्त्व कैसे रहा?

उ—आत्मा तो अखण्ड एक वस्तु है उसके अनुभव से रहित पुरुषोंके समझानेकेलिये विविध शक्तियोंका वर्णन है उसका प्रयोजन भी परिणत ऐसी अनंत शक्तियोंका पिण्डरूप अखंड निज शक्तियोंमें एकमेक सामान्य अभेद स्वरूप चैतन्यमय आत्मा है इसको लक्ष्य करानेके अर्थ व्यवहारके अनंतर निश्चयमें, निश्चयके अनंतर अखडानुभव में पहुँचानेके अर्थ है। यही तत्त्व सुसम्यकदर्शनका विषय है यही कारणसमयसार है, यही परमात्मतत्त्व है, यही शुद्ध स्वरूप है, यही परमपारिणामिक भाव है। इसका ही लक्ष्य संवेदन, परिणमन मोक्षमार्ग है पूर्णशुद्ध परिणमन मोक्ष है।

इति श्री अध्यात्मयोगी, शान्तमूर्ति पूज्य
श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

द्वारा विरचित अध्मात्मचर्चा (पूर्वार्द्ध)

समाप्त हुआ।